संवाद दर्शन

सहयोग राशि-5/-

विक्रम संवत : 2082 | वर्ष : 2026

हिन्दी पाक्षिक

अंक : जनवरी (द्वितीय)

सामाजिक समरसता

कुटुंब प्रबोधन

स्व का बोध

पर्यावरण संरक्षण

नागरिक कर्त्तव्य

पंच परिवर्तन

वंचित को सशक्त करें –डॉ. मोहन भागवत जी

संघ शताब्दी वर्ष के निमित्त 1 जनवरी को रायपुर (छत्तीसगढ़) के श्रीराम मंदिर में सामाजिक सद्भाव बैठक का आयोजन किया गया। बैठक को संबोधित करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूज्य सरसंघचालक डॉ. मोहन भागवत जी ने कहा कि अपने बीच जो लोग दुर्बल या वंचित हैं, उनके सशक्तिकरण के लिए अवश्य सोचना चाहिए। यदि हम समर्थ हैं तो हमारा सामर्थ्य उनके उपयोग में आना चाहिए। हमारा पूरा समाज एक है, जाति पंथ उसके अंग हैं। जिस प्रकार पूरा शरीर एक है, इसी तरह हमारी पृथक आस्था व आचरण होने के बाद भी हमारी अस्मिता एक है। भारत में सर्वत्र लोग अलग–अलग आस्था और तौर तरीके के बाद भी सद्भाव के कारण एक साथ रहते हैं। घर में काम करने वाले नौकर को भी उस घर के बच्चे चाचा कहते हैं। उसे पूरा सम्मान देते हैं। यह सद्भभाव कई वर्षों से चला आ रहा है।

उन्होंने कहा कि ब्रिटिश लोग स्वेच्छा से भारत से नहीं गए, हमारे लोगों ने एकजुट होकर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। परंतु अपनी एकता और अखंडता के कुछ तंतुओं को हम भूल गए, इसलिए दृष्टि में भेद आ गया था। अंग्रेजों को हमारी एकता अच्छी नहीं लगी तो उन्होंने यह व्यवस्था कर दी कि उनके जाने के बाद भी यहां आपस में भेद रहे। लेकिन उनके प्रयासों को हमने समय–समय पर असफल किया। जहाँ सद्भावना पक्की है, वहाँ बिगाड़ने वालों की नहीं चलती। हम समाज और राष्ट्र के नाते एक हैं। भारत में आकर भी भारत की रीति में कुछ लोग नहीं रहते हैं, इसलिए वह आक्रमण करते हैं। जहां समाज में संगठन और सद्भावना है, वहाँ वह असफल हो जाते हैं। लव जिहाद, मतांतरण, व्यसन आदि पर प्रबोधन करना होगा। अकेलेपन की भावना व्यसन की ओर धकेलती है।

दूसरा, घर में, कुटुम्ब में प्रबोधन करें। सप्ताह में एक निश्चित दिन सब लोग एकत्र हों। भजन आदि करें और घर में बना भोजन मिलकर करें। उसके बाद अपने कुल रीति, पूर्वजों, उनकी विशेषता इत्यादि की चर्चा करनी चाहिए। कुछ कमी है तो उसे दूर करना है। परिवार के बीच देश की अच्छी बातों और चुनौतियों पर चर्चा करें। तीसरा, पर्यावरण संरक्षण के लिए पानी बचाए, प्लास्टिक का उपयोग कम करें और पेड़ लगाए। यह कार्य सभी व्यक्तिगत स्तर पर कर सकते हैं।

चौथा, घर में अपनी भाषा बोलें तथा कोई एक भारतीय भाषा सीखें। अपने घर में मातृभाषा में बातचीत करना तथा अपना वेश पहनना चाहिए। अपने घर में अपने आदर्श, महापुरुष, संत के चित्र होने चाहिए। कभी कभार आसपास की झुग्गी में भी जाना चाहिए। वे भी अपने हैं।

पांचवां, संविधान में प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, नागरिक कर्त्तव्य, नीति–निर्देशक तत्व बताए गए हैं, सबको इसकी जानकारी होनी चाहिए। देश के सभी नियम कानून का पालन करना चाहिए। कुछ बातें लिखित नहीं होती, लेकिन वह सामाजिक मूल्य हैं। बड़े बुजुर्गों का बच्चे सम्मान करें, इससे विनम्रता आती है। समाज में आपस में सहयोग बढ़े, इसका प्रयास प्रत्येक समाज को करना चाहिए। खंड स्तर पर यह प्रयास हो, इस दिशा में सक्रिय हों।

इस अवसर पर सरसंघचालक जी ने विविध जाति, पंथ और समाजों के प्रतिनिधियों के साथ पंगत में भोजन किया।

संवाद दर्शन
हिन्दी पाक्षिक

सलाहकार संपादक
देवेन्द्र मिश्र

संपादक
संजीव कुमार

प्रकाशक एवं मुद्रक
बिमल कुमार जैन

प्रिंटर्स
लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस,
शशि काम्प्लेक्स,
नाला रोड, कदमकुआँ
पटना

पता
विश्व संवाद केंद्र
104-105, सूर्या अपार्टमेंट,
फ्रेजर रोड, पटना - 800 001
संपर्क = 0612 2216048

ई-मेल- vskpatna@gmail.com
vskbihar@gmail.com
वेबसाइट- www.vskbihar.com

अनुक्रमणिका

समाचार ....
बोध कथा 02
सनातन साहित्य 03
आमुख 05
पंच परिवर्तन..... 08
सामाजिक समरसता..... 11
पर्यावरण संरक्षण 19
कुटुम्ब प्रबोधन 24
स्व आधारित जीवन..... 29
नागरिक कर्त्तव्य बोध 32
स्वास्थ्य..... 36

पाठकों के नाम पत्र

प्रिय पाठक,
सादर नमस्कार।

आशा है आप स्वस्थ एवं सानंद होंगे। विदित हो कि 'संवाद दर्शन' पत्रिका राष्ट्र तथा प्रदेश की घटनाओं और महत्वपूर्ण बिन्दुओं को आधार बनाकर प्रकाशित हो रही है। आपका स्नेह हमेशा प्राप्त होता रहता है। पत्रिका द्वारा सदस्यों/ पाठकों के नाम, पता, दूरभाष तथा ई–मेल में सुधार के लिए योजना चलायी जा रही है। संवाद दर्शन परिवार आशा करता है कि पत्रिका आप तक पहुंच रही होगी। यदि नहीं पहुंच रही है तो आप हमारे दूरभाष पर संपर्क कर या हमारे पते पर पत्र लिखकर अपने पता का सुधार करवा सकते हैं।

शेष शुभ!

महाकपि का बलिदान

हिमालय के जंगल में ऐसे कई पेड़–पौधे हैं, जो अपने आप में अनोखे हैं। ऐसे पेड़–पौधे और कही नहीं पाए जाते। इन पर लगने वाले फल और फूल सबसे अलग होते हैं। इन पर लगने वाले फल इतने मीठे और खुशबूदार होते हैं कि कोई भी इन्हें खाए बिना रह नहीं सकता। ऐसा ही एक पेड़ नदी किनारे था, जिस पर सारे बंदर अपने राजा के साथ रहा करते थे। बंदरों के राजा का नाम महाकपि था। महाकपि बहुत ही समझदार और ज्ञानवान था।

महाकपि का आदेश था कि उस पेड़ पर कभी कोई फल न छोड़ा जाए। जैसे ही फल पकने को होता, वैसे ही वानर उसे खा लेते थे। महाकपि का मानना था कि अगर कोई पका फल टूटकर नदी के रास्ते किसी मनुष्य तक पहुंचा, तो ये उनके लिए बहुत हानिकारक हो सकता है। सभी वानर महाकपि की इस बात से सहमत थे और उनकी आज्ञा का पालन करते थे, लेकिन एक दिन एक पका फल नदी में जा गिरा, जो पत्तियों के बीच छुपा हुआ था।

वह फल नदी में बहकर एक जगह पहुंच गया, जहां एक राजा अपनी रानियों के साथ घूम रहा था। फल की खुशबू इतनी अच्छी थी कि आनंदित होकर रानियों ने अपनी आंखें बंद कर ली। राजा भी इस खुशबू पर मोहित हो गया। राजा ने अपने आसपास निहारा, तो उसे नदी में बहता हुआ फल दिखाई दिया। राजा ने उसे उठाकर अपने सिपाहियों को दिया और कहा कि कोई इसे खाकर देखे कि यह फल कैसा है। एक सिपाही ने उस फल को खाया और कहा कि ये तो बहुत मीठा है।

इसके बाद राजा ने भी उस फल को खाया और आनंदित हो उठा। उसने अपने सिपाहियों को उस पेड़ को खोज निकालने का आदेश दिया, जहां से ये फल आया था। काफी मेहनत के बाद राजा के सिपाहियों ने पेड़ को खोज निकाला। उन्हें नदी किनारे वो सुंदर पेड़ नजर आ गया।

उस पर बहुत सारे वानर बैठे हुए थे। सिपाहियों को ये बात पसंद नहीं आई और उन्होंने वानरों को एक–एक करके मारना शुरू कर दिया। वानरों को घायल देखकर महाकपि ने समझदारी से काम लिया। उसने एक बांस का डंडा पेड़ और पहाड़ी के बीच पुल की तरह लगा दिया। महाकपि ने सभी वानरों को उस पेड़ को छोड़कर पहाड़ी की दूसरी तरफ जाने का आदेश दिया।

वानरों ने महाकपि की आज्ञा का पालन किया और वो सभी बांस के सहारे पहाड़ी के दूसरी ओर पहुंच गए, लेकिन इस दौरान डरे–सहमे बंदरों ने महाकपि को बुरी तरह से कुचल दिया। सिपाहियों ने तुरंत राजा के पास जाकर सारी बात बताई। राजा, महाकपि की वीरता से बहुत प्रसन्न हुए और सिपाहियों को आदेश दिया कि महाकपि को तुरंत महल लेकर आएं और उसका इलाज करवाएं। सिपाहियों ने ऐसा ही किया, लेकिन जब महाकपि को महल लाया गया, तब तक वह मर चुका था।

कहानी से सीख– वीरता और समझदारी हमें इतिहास के पन्नों में जगह देती है। साथ ही इस कहानी से यह भी सीख मिलती है कि हर मुश्किल घड़ी में समझदारी से काम लेना चाहिए।

गर्व कीजिए अपने सनातन साहित्य पर

—(राघवयादवीयम्)

तां सः गोरमदोश्रीदः विग्राम् असदरः अतत।
वैरम् आस पलाहारा विनासा रविवंशके ॥ १८॥

पृथ्वी को प्रिय (विष्णु यानि राम) के दाहिनी भुजा व उन्हें गौरव देने वाले, निडर लक्ष्मण द्वारा नाक काटे जाने पर, उस माँसभक्षी नासाविहीन (शूर्पणखा) ने सूर्यवंशी (राम) के प्रति वैर पाल लिया।

केशवं विरसानाविः आह आलापसमारवैः।
ततरोदसम् अग्राविदः अश्रीदः अमरगः असताम्॥ १८॥

उल्लास, जीवनीशक्ति और तेज के ह्रास होने का भान होने पर केशव (कृष्ण) से मित्रवत वाणी में इंद्र दृ जिसने उन्नत पर्वतों को परास्त कर महत्वहीन किया (उद्दंड उड़नशील पर्वतों के पंखों को इंद्र ने अपने वज्रायुध से काट दिया था), जिसने अमर देवों के नायक के रूप में दुष्ट असुरों को श्रीविहीन किया — ने धरा व नभ के रचयिता (कृष्ण) से कहा।

गोद्युगोमः स्वमायः अभूत् अश्रीगखरसेनया।
सह साहवधारः अविकलः अराजत् अरातिहा ॥ १९॥

पृथ्वी व स्वर्ग के सुदूर कोने तक व्याप्त कीर्ति के स्वामी राम द्वारा खर की सेना को श्रीविहीन परास्त करने से, उनकी एक गौरवशाली, निडर, शत्रु संहारक के रूप में शालीन छवि चमक उठी।

हा अतिरादजरालोक विरोधावहसाहस।
यानसेरखग श्रीद भूयः म स्वम् अगः द्युगः ॥ १९॥

हे (कृष्ण), सर्वकामनापूर्ति करने वाले देवों के गर्व का शमन करने वाले, जिनका वाहन वेदात्मा गरुड़ है, जो वैभव प्रदाता श्रीपति हैं, जिन्हें स्वयं कुछ ना चाहिए, आप इस दिव्य वृक्ष को धरती पर ना ले जाएँ।

हतपापचये हेयः लंकेशः अयम् असारधीः।
रजिराविरतेरापः हा हा अहम् ग्रहम् आर घः ॥ २०॥

पापी राक्षसों का संहार करनेवाले (राम) पर आक्रमण का विचार, नीच, विकृत लंकेश दृ सदैव जिसके संग मदिरापान करनेवाले क्रूर राक्षसगण विद्यमान हैं दृ ने किया।

घोरम् आह ग्रहं हाहापः अरातेः रविराजिराः।
धीरसामयशोके अलं यः हेये च पपात हः ॥ २०॥

व्यथाग्रसित हो, शत्रु के शक्ति को भूल, उन्हें (कृष्ण को) बंदी बनाने का आदेश गन्धर्वराज इंद्र दृ सूर्य की तरह शुभ्र स्वर्णाभूषण अलंकृत मगर कुत्सित बुद्धि से ग्रस्त – ने दे दिया

ताटकेयलवादत् एनोहारी हारिगिर आस सः।
हा असहायजना सीता अनाप्तेना अदमनाः भुवि ॥ २१ ॥

ताड़कापुत्र मारीच को काट मारने से प्रसिद्द, अपनी वाणी से पाप का नाश करने वाले, जिनका नाम मनभावन है, हाय, असहाय सीता अपने उस स्वामी राम के बिना व्याकुल हो गईं (मारीच द्वारा राम के स्वर में सीता को पुकारने से)।

विभुना मदनाप्तेन आत आसीनाजयहासहा।
सः सराः गिरिहारी ह नो देवालयके अटता ॥ २१ ॥

प्रद्युम्न संग देवलोक में विचरण कर रहे कृष्ण को रोकने में, पुत्र जयंत के शत्रु प्रद्युम्न के अट्टहास को अपनी बाणवर्षा से काट कर शांत करनेवाले, अथाह संपत्ति के स्वामी, पर्वतों के आक्रमणकर्ता इंद्र, असमर्थ हो गए।

भारमा कुदशाकेन आशराधीकुहकेन हा।
चारुधीवनपालोक्या वैदेही महिता ह्रता ॥ २२ ॥

लक्ष्मी जैसी तेजस्वी का, अंत समय आसन्न होने के कारण नीच दुष्ट छली नीच राक्षस (रावण) द्वारा, उच्च विचारों वाले वनदेवताओं के सामने ही उस सर्वपूजिता सीता का अपहरण कर लिया गया।

ताः ह्रताः हि महीदेव ऐक्य अलोपन धीरुचा।
हानकेह कुधीराशा नाकेशा अदकुमारभाः ॥ २२ ॥

तब, एक ब्राह्मण की मैत्री से उस लुप्त अविनाशी, चिरस्थायी ज्ञान व तेज को पुनर्प्राप्त कर नाकेश (स्वर्गराज, इंद्र) दृ जिनकी इच्छा पलायन करने वाले देवताओं की रक्षा करने की थी दृ ने आकुल कुमार प्रद्युम्न का प्रताप हर लिया।

(समाप्त)

एकता, स्वतंत्रता, समानता रहे

एकता, स्वतंत्रता, समानता रहे।
देश में चरित्र की महानता रहे, महानता रहे ॥

कण्ठ हैं करोड़ों, गीत एक राष्ट्र का
रंग हैं अनेक, चित्र एक राष्ट्र का
रूप हैं अनेक, भाव एक राष्ट्र का
शब्द हैं अनेक, अर्थ एक राष्ट्र का
चेतना, समग्रता, समानता रहे।
देश में चरित्र की महानता रहे, महानता रहे
॥१॥

विकास में विवेक स्वप्न एक राष्ट्र का
योजना अनेक, ध्यान एक राष्ट्र का
कर्म हैं अनेक, लक्ष्य एक राष्ट्र का
पंथ हैं अनेक, धर्म एक राष्ट्र का
सादगी, सहिष्णुता, समानता रहे।
देश में चरित्र की महानता रहे, महानता रहे
॥२॥

जाति हैं अनेक, रक्त एक राष्ट्र का
पंक्ति हैं अनेक, लेख एक राष्ट्र का
गाँव हैं अनेक, अंग एक राष्ट्र का
किरण हैं अनेक, सूर्य एक राष्ट्र का
जागरण, मनुष्यता, समानता रहे।
देश में चरित्र की महानता रहे, महानता रहे
॥३॥

पंच परिवर्तन : राष्ट्र निर्माण की आधारशिला

–राजेश पाण्डेय

किसी भी राष्ट्र का उत्थान केवल राजनीतिक या आर्थिक योजनाओं से नहीं होता, बल्कि समाज के आंतरिक चरित्र, संस्कार और आचरण से होता है। भारत जैसे सांस्कृतिक राष्ट्र में परिवर्तन की प्रक्रिया सदैव व्यक्ति – परिवार – समाज – राष्ट्र के क्रम में चली है। इसी चिंतन से "पंच परिवर्तन" की अवधारणा सामने आती है। यह पाँच ऐसे व्यवहारिक और नैतिक परिवर्तन हैं, जो यदि व्यक्ति और समाज में स्थापित हो जाएँ, तो राष्ट्र स्वतः सशक्त, समरस और आत्मनिर्भर बन सकता है। पंच परिवर्तन कोई नारा नहीं, बल्कि दैनिक जीवन में उतारने योग्य जीवन–दृष्टि है।

डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार और द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर) ने स्पष्ट किया कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण सत्ता परिवर्तन से नहीं, बल्कि समाज के चरित्र परिवर्तन से होगा। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में श्पंच परिवर्तनश की संकल्पना उभरती हैकृजो व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र तक परिवर्तन की योजना प्रस्तुत करती है। पंच परिवर्तन संघ की व्यावहारिक राष्ट्र साधना है।

1. सामाजिक समरसता : 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की जीवंत अभिव्यक्ति

सामाजिक समरसता पंच परिवर्तन की प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। भारत की विविधता–जाति, भाषा, पंथ, क्षेत्र–हमारी शक्ति है, यदि उसमें भेद नहीं, भाव हो। सामाजिक समरसता का अर्थ है:

- हर व्यक्ति को सम्मान देना
- जन्म या पहचान के आधार पर नहीं, मानवीय गुणों के आधार पर मूल्यांकन

- "सबका सहभाग, सबका सम्मान" को व्यवहार में लाना

जब समाज समरस होता है, तभी राष्ट्र एकजुट होकर चुनौतियों का सामना कर सकता है। हमारे दृष्टि में समाज जातियों या वर्गों का समूह नहीं, बल्कि एक जैविक इकाई (Organic Society) है। भारतीय दर्शन कहता है:
"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्"
सामाजिक समरसता का अर्थ है–

- जन्म आधारित ऊँच–नीच का त्याग
- सेवा, समानता और सद्भाव का व्यवहार
- समाज के अंतिम व्यक्ति को अपने जैसा मानना

संघ के सेवा कार्य–वनवासी कल्याण आश्रम, बस्ती विकास, सामाजिक समरसता गतिविधियाँ–इस विचार को व्यवहार में उतारते हैं।
डॉ. अम्बेडकर, संत रविदास, कबीर, नारायण गुरुकृये सभी समरस समाज की सांस्कृतिक परंपरा के प्रतीक हैं। भारतीय चिंतकों का स्पष्ट मत है कि जब तक समाज एक नहीं होगा, तब तक राष्ट्र सशक्त नहीं हो सकता।

2. कुटुंब प्रबोधन – संस्कारों की प्रथम शाखा

परिवार समाज की सबसे छोटी लेकिन सबसे सशक्त इकाई है। यदि परिवार सशक्त है तो समाज सशक्त होगा।

कुटुंब प्रबोधन का अर्थ है–

- परिवार में संस्कार, संवाद और अनुशासन
- बड़ों का सम्मान, छोटों के प्रति स्नेह
- मोबाइल, टीवी और भौतिकता के बीच भी आपसी बातचीत और सामूहिक समय

आज एकल परिवार, पीढ़ियों का टकराव और नैतिक शून्यता चिंता का विषय है। पंच परिवर्तन हमें स्मरण कराता है कि संस्कारों का प्रथम विद्यालय परिवार ही है। भारतीय संस्कृति में परिवार केवल सुविधा नहीं, बल्कि संस्कारों की प्रयोगशाला है।
पितृ–ऋण, मातृ–ऋण, गुरु ऋण–ये सभी कुटुंब आधारित संस्कारों से ही पुष्ट होते हैं। कुटुंब प्रबोधन का तात्पर्य उपभोग नहीं, सहभागिता आधारित जीवन तथा पीढ़ियों के बीच संवाद करना है। भारतीय कुटुंब व्यवस्था केवल सह–निवास नहीं, बल्कि संस्कारों का प्रवाह है। जिसमें त्याग, अनुशासन, कर्त्तव्य और सह–अस्तित्व है।
डॉ. हेडगेवार स्वयं कहते थे, "अच्छा स्वयंसेवक वही है, जो घर, समाज और राष्ट्र–तीनों के प्रति उत्तरदायी हो।"

यदि परिवार सुसंस्कृत है, तो व्यक्ति को अलग से चरित्र निर्माण की पाठशाला की आवश्यकता नहीं पड़ती। कुटुंब प्रबोधन पंच परिवर्तन का वह आधार है, जहाँ से चरित्रवान नागरिक का निर्माण होता है।

3. स्व का बोध – स्वर्णिम भविष्य की आधारशिला

एक बात कही जाती है कि जिसको अपने इतिहास का बोध नहीं होता उसका भविष्य में कोई अस्तित्व नहीं होता। स्व का बोध का अर्थ है–अपने अस्तित्व, अपने कर्तव्य और अपनी भूमिका को सही रूप में समझना। जब व्यक्ति यह जान लेता है कि वह कौन है, उसका जीवन–उद्देश्य क्या है और समाज के प्रति उसकी जिम्मेदारियाँ क्या हैं, तभी उसके व्यक्तित्व का सही विकास होता है।
स्व का बोध केवल "मैं" तक सीमित नहीं होता, बल्कि "मैं और समाज" के संबंध को भी स्पष्ट करता है। भारतीय संस्कृति में स्व का अर्थ शरीर नहीं, बल्कि मन, बुद्धि और आत्मा का समन्वय है। यही कारण है कि यहाँ व्यक्ति को केवल अपने हित नहीं, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के हित में सोचने की प्रेरणा दी जाती है।
किसी भी देश के विकास के लिए उसे देश के जो संसाधन है उनका सदुपयोग करते हुए मनुष्य को

अपने विकास के मार्गों को प्रशस्त करना चाहिए यदि संसाधन का कोई विनाश करेगा तो उसकी अगली पीढ़ी के लिए कुछ भी नहीं बचेगा। स्व आधारित जीवन का आग्रह का तात्पर्य यह है कि आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी आयामों में हमें स्वयं के पैरों पर खड़े होना चाहिए। आत्मनिर्भरता के अभाव में दूसरों के ऊपर हमारी निर्भरता बढ़ जाएगी और हम सुरक्षा के शिकार बने रहेंगे।

4. पर्यावरण संरक्षण – भारतीय जीवन दृष्टि का स्वाभाविक अंग

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता का स्थान दिया गया है। यदि प्रकृति सुरक्षित है, तभी आने वाली पीढ़ियाँ सुरक्षित होंगी। यह केवल सरकार की नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी है।

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण कोई आधुनिक फैशन नहीं, बल्कि संस्कार है। देखा जाए तो विकास और पर्यावरण विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं।

पर्यावरण संरक्षण का अर्थ–

- जल, जंगल और जमीन का संतुलित उपयोग
- प्लास्टिक का त्याग, वृक्षारोपण
- ऊर्जा और संसाधनों का संयमित प्रयोग

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश–ये पंचमहाभूत जीवन के आधार हैं। हमारा मानना है कि प्रकृति का दोहन नहीं, संरक्षण और संवर्धन हो। विकास मानव केंद्रित हो, प्रकृति विरोधी नहीं। वृक्षों को देवता मानना, नदियों को माँ कहना–यह भावनात्मक नहीं, बल्कि उत्तरदायी दृष्टि है।

आज का पर्यावरण संकट पश्चिमी उपभोगवादी संस्कृति का परिणाम है। पंच परिवर्तन भारतीय समाधान प्रस्तुत करता है। सूत्र वाक्य में संघ ने नारा दिया है – 'वृक्ष लगाओ, जल बचाओ और प्लास्टिक हटाओ'।

5. नागरिक कर्त्तव्य बोध

मनुष्य की पहचान उसके अधिकारों से नहीं, उसके कर्त्तव्य से होती है। हर व्यक्ति पहले नागरिक नहीं, बल्कि राष्ट्र सेवक होता है। संघ के संस्थापक परम पूज्य डॉ. हेडगेवार जी का जीवन स्वयं इसका उदाहरण था। इस संदर्भ में पूज्य श्री गुरुजी ने कहा था,

"अनुशासन बाहर से थोपा गया बंधन नहीं, बल्कि भीतर से जागृत कर्त्तव्य भावना है।"

कर्त्तव्य बोध का अर्थ है

- बिना अपेक्षा सेवा
- अनुशासन को आत्मानुशासन में बदलना
- कानून से पहले कर्त्तव्य की मर्यादा

इसीलिए संघ का स्वयंसेवक आपदा, महामारी, सामाजिक संकट में बिना नाम–यश की चिंता किए सेवा करता है–यही कर्त्तव्य बोध का जीवंत उदाहरण है।

पंच परिवर्तन संघ की दीर्घकालिक राष्ट्र साधना का व्यवहारिक सूत्र है। यह सत्ता परिवर्तन का नहीं बल्कि चित्त परिवर्तन का मार्ग है।

जब

- समाज समरस होगा,
- कुटुंब सुसंस्कृत होगा,
- हमारा जीवन आत्मगौरव युक्त होगा,अर्थनीति स्वदेशी होगी,
- जीवन पर्यावरण–अनुकूल होगा

और नागरिक कर्त्तव्यनिष्ठ होंगे

तब भारत केवल आर्थिक महाशक्ति नहीं, बल्कि "परम वैभव संपन्न, विश्वकल्याणकारी राष्ट्र" बनेगा।

यही राष्ट्र दृष्टि है और यही पंच परिवर्तन का लक्ष्य है।

(लेखक रा. स्व. संघ के उत्तर– पूर्व क्षेत्र के क्षेत्र प्रचार प्रमुख हैं।)

भारत के स्वाभिमान की कुंजी–पंच परिवर्तन

–डॉ. सुधांशु कुमार

आज हमारे समक्ष एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण की चुनौती है। ऐसे में पंच परिवर्तन की अवधारणा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र निर्माण के लक्ष्यों की प्राप्ति की जो रूपरेखा प्रस्तुत करती है, उसका एक आर्थिक पक्ष भी है। यह संकल्पना भारत में व्यक्ति और समाज के स्तर पर सकारात्मक बदलाव लाने का मार्ग दिखाती है। एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण तभी संभव है जब वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो। गौर से देखें तो पंच परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं में अर्थ और वित्त का विषय प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से निहित है।

किसी दौर में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की स्थिति केवल वर्तमान से नहीं, बल्कि अतीत में हुए घटनाक्रमों से भी निर्धारित होती है। इसी प्रकार आने वाले समय और पीढ़ियों का आधार भी बहुत हद तक वर्तमान से तय होता है। अतः यह आवश्यक है कि भविष्य कैसा हो इसकी स्पष्टता हो और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ठोस प्रयास किए जाएँ। इस हेतु यह भी समझना महत्वपूर्ण है कि बीते हुए समय में ऐसे कौन–से प्रयास हुए हैं जिनके कारण हम आज वर्तमान परिस्थिति में हैं, चाहे वह आर्थिक, पारिवारिक या सांस्कृतिक संदर्भ ही क्यों न हो।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

राष्ट्र की शक्ति, समाज की स्थिरता और व्यक्ति की गरिमा–तीनों का आधार आर्थिक सशक्तिकरण बनता जा रहा है। अंग्रेजों के भारत की शासन व्यवस्था छोड़ने के बाद लंबे समय तक जिस दिशा में राष्ट्रनीति और विशेषकर अर्थनीति को आगे बढ़ाया गया, उससे सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन आर्थिक संसाधनों पर अधिकाधिक आधारित होता गया, जबकि इसकी पूर्ति के लिए आवश्यक कारकों में राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास सीमित रहे। इस दौर के अनुभवों के आधार पर परस्पर अंतर्विरोधी विचारधाराएँ भी इस तथ्य

को स्वीकार करती रही हैं कि आर्थिक रूप से स्वावलंबी और सशक्त समाज एवं राष्ट्र ही स्थायी प्रगति कर सकता है।

महाभारत में उद्धृत है– "धर्मेण हीनः पुरुषः पशुभिः समानः।" अर्थात् धर्म और आत्मबल से हीन व्यक्ति पशु के समान होता है। इसे यदि विस्तृत रूप में देखें तो हम सब सहमत होंगे कि राष्ट्र भी यदि आत्मनिर्भरता से हीन हो तो उसकी स्थिति दुर्बल हो जाती है। यदि राष्ट्र पूर्व की तरह बाहरी सहयोग पर अत्यधिक निर्भर रहेगा तो उसकी स्वतंत्रता अधूरी रहेगी।

वैश्विक संदर्भ

इस अवधारणा को तेजी से बदलती वैश्विक भू–राजनीति परिस्थिति से और अधिक बल मिलता है, जिसमें वैश्वीकरण के प्रयोग असफल होते दिख रहे हैं और विश्व के प्रमुख राष्ट्र अपने–अपने आर्थिक हितों को बढ़ाने में संलग्न हैं। अतीत में विश्व के आर्थिक रूप से प्रमुख राष्ट्र आर्थिक और सामरिक कारणों से पहले अमेरिका और सोवियत संघ के शीतयुद्धकालीन द्वंद्व, फिर अमेरिकी वर्चस्व की कोशिशों के दौर से निकलकर अब अपने–अपने आर्थिक हितों को बढ़ाने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। इस कालखंड में यूरोप और मध्य–पूर्व सहित प्रमुख राष्ट्रों के बीच रणनीतिक सामंजस्य में वहाँ की संस्कृति और धर्म, जिसे हम पाश्चात्य सभ्यता कह सकते हैं, ने भी एक प्रमुख मार्गदर्शक शक्ति के रूप में कार्य किया है। इसके विस्तारवादी प्रयासों के असर से भारत भी अछूता नहीं रह सका।

अमूमन आर्थिक और तकनीक से संपन्न देशों ने भारत की जनसंख्या को केवल एक बड़े उपभोक्ता बाजार के रूप में देखा है। वहीं चीन जैसी विस्तारवादी और साम्यवाद–प्रेरित अर्थव्यवस्था ने सस्ते सामानों को भारत में डंप कर स्थानीय उत्पादन क्षमता को कमजोर करने का प्रयास किया। इन चुनौतियों के बीच लंबे समय तक स्थानीय शासन व्यवस्था ने आर्थिक आत्मनिर्भरता के बजाय तात्कालिक आवश्यकताओं और लोक–लुभावन योजनाओं पर केंद्रित आर्थिक नीतियों को बढ़ावा दिया, जिसके कारण भारत आवश्यक तकनीक और उत्पादन क्षमता में आत्मनिर्भरता हासिल नहीं कर सका। लंबे समय तक नीतिगत स्तर पर एक दीर्घकालीन विकास योजना नहीं दिखी।

स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता

एक स्वाभिमानी राष्ट्र के आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति किसी अन्य राष्ट्र के सहयोग या भरोसे पर आधारित नहीं हो सकती। पूर्व के अनुभव बताते हैं कि चाहे वह निर्भरता तकनीक और पूँजी की हो या श्रम कौशल की–इस्लामिक आक्रमण, यूरोपीय विस्तारवाद, सोवियत संघ अथवा अमेरिकी सहयोग–ये बातें भारत की आवश्यकता की बजाय बाहरी राष्ट्रों की आर्थिक, धार्मिक, कूटनीतिक या सामरिक आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं से निर्धारित होती रही हैं। परिणामस्वरूप, लंबे स्वशासन के बावजूद भारत आर्थिक संपन्नता और आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं कर सका है।

ऐसे में भारत के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता की चुनौती किसी अन्य राष्ट्र से कहीं अधिक है। ऐसा इसलिए भी क्योंकि भारत के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता केवल विकास का साधन नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान का आधार भी है। अतीत के अनुभवों से सीखते हुए, वर्तमान में ठोस प्रयास करते हुए और भविष्य के लिए स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित करके ही इस दिशा में स्थायी प्रगति की जा सकती है।

चुनौतियाँ

भारत के सामने एक बड़ी और घनी आबादी को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सशक्त करने की आवश्यकता है। इसका एक बड़ा हिस्सा युवाओं का है, जिनमें राष्ट्र निर्माण की असीम क्षमता है, केवल उसे दिशा दिखाने की आवश्यकता है। वर्तमान दौर में आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की चुनौती में भारत की मजबूत एवं गौरवशाली सांस्कृतिक आधार के विरोधी ताकतों से निपटना भी है। साथ ही पेट्रोलियम उत्पादों के आयात के लिए बाहरी देशों पर निर्भरता की चुनौती, वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार में विभिन्न राष्ट्रों द्वारा लगाए जाने वाले

कर और अन्य बाधाएँ या फिर स्थानीय स्तर पर तकनीक और पूँजी की उपलब्धता की सीमा बड़ी चुनौती बनी हुई है। ऐसे में भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता को लेकर विशेष विमर्श आधारित प्रयास की आवश्यकता है, जिसके केंद्र में दीर्घकालीन आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के लक्ष्य हों।

आर्थिक आत्मनिर्भरता की राह में कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें जनसंख्या का दबाव है, जहाँ बड़ी और घनी आबादी को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सशक्त करना आवश्यक है। इसके साथ ही उन्नत तकनीक के लिए बाहरी देशों पर निर्भरता, औद्योगिक विकास को गति देने के लिए पर्याप्त पूँजी निवेश का अभाव, श्रमिकों में कौशल विकास की कमी जो उत्पादन क्षमता को सीमित करती ह। तथा कृषि क्षेत्र में उत्पादकता और आय का असमान वितरण शामिल है। इन चुनौतियों का समाधान भारत को वास्तविक आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर कर सकता है।

इस संदर्भ में जब आने वाले समय के लिए पंच परिवर्तन पर आधारित राष्ट्र निर्माण की बात होती है, तो इसमें राष्ट्र की आर्थिक उन्नति में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के योगदान की भूमिका भी रेखांकित होती है।

आगे की राह

भारत के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता की अवधारणा केवल आर्थिक रूप से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्वाभिमान के लिए भी आवश्यक है। यही मार्ग भारत को विश्व की अग्रणी शक्ति बनाने में सहायक होगा। स्वनिर्मित उन्नत वस्तुओं और स्तरीय सेवाओं का प्रयोग न केवल घरेलू उद्योगों एवं उद्यमिता को प्रोत्साहित करता है, बल्कि रोजगार और सशक्त समाज निर्माण को भी सुनिश्चित करता है।

भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए कृषि, उद्योग, तकनीक, समाज और संस्कृति सभी क्षेत्रों में समन्वित प्रयास आवश्यक हैं। कृषि परिवर्तन के अंतर्गत टिकाऊ और आधुनिक तकनीक का सदुपयोग करते हुए पारंपरिक खेती को सशक्त बनाना आवश्यक है। निर्यातोन्मुख उत्पादन से भारत वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान मजबूत कर सकता है, जबकि लघु एवं मध्यम उद्योगों को प्रोत्साहन देकर रोजगार सृजन और स्थानीय अर्थव्यवस्था को गति दी जा सकती है। रक्षा उत्पादन में आत्मनिर्भरता राष्ट्र को आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामरिक दृष्टि से भी सशक्त बनाती है।

तकनीकी नवाचार और अनुसंधान में निवेश बढ़ाना, शिक्षा प्रणाली में कौशल विकास पर बल देना तथा डिजिटल और भौतिक संरचना का विस्तार करना आधुनिक चुनौतियों का सामना करने के लिए अनिवार्य है। युवाओं को उद्यमिता के लिए प्रेरित करना और महिलाओं की आर्थिक भागीदारी सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होंगे। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का सार्वभौमिक विस्तार समान अवसरों और सामाजिक सुरक्षा का आधार बन सकता है।

आर्थिक विकास के साथ सांस्कृतिक गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखना भी आवश्यक है। भारतीय कला, साहित्य और परंपराओं को आर्थिक अवसरों से जोड़कर हमारी सांस्कृतिक धरोहर को आधुनिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनाया जा सकता है। इस प्रकार समन्वित और दीर्घकालिक प्रयासों से ही भारत ठोस और स्थायी आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

कुल मिलाकर आर्थिक आत्मनिर्भरता भारत के लिए केवल विकास का लक्ष्य नहीं है, बल्कि यह राष्ट्र के स्वाभिमान और सशक्तिकरण की अनिवार्य शर्त है। आज आवश्यकता इस बात की है कि भारत आधुनिक तकनीक और स्थानीय प्रयासों के समन्वय से आर्थिक आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को साकार करे। पंच परिवर्तन की परिकल्पना इस दिशा में एक मार्गदर्शक रूपरेखा प्रस्तुत करती रहेगी।

(लेखक आर्थिक और नीतिगत मामलों के जानकार हैं)

सदियों से समरस भारतीय समाज

—अनिल कुमार

समरसता राष्ट्रीय समाज की आवश्यकता है। इसे आध्यात्मिक दृष्टिकोण, आर्थिक दृष्टिकोण, राष्ट्रीय दृष्टिकोण, वैचारिक दृष्टिकोण, व्यवहारिक दृष्टिकोण से समझा जा सकता है। समरसता का विषय ऋषि मुनि विचारक से लेकर वर्तमान समय तक के साहित्य में पिरोहित है।

गीता में समरसता के विषय को लेकर भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को स्पष्ट रूप से बताए हैं –

समोऽहं सर्व भूतेषु न मे दृष्तेस्ति न त प्रियारू।
ये भजन्ति तु मां भक्तया,मपि ते तेषु चाप्यहम ।

अर्थात् भगवान सभी जीवों के प्रति समान हैं ना वह किसी से द्वेष रखते हैं ना किसी से विशेष प्रेम ।

अर्थात ब्रह्मांड के रचनाकार भी अपनी रचना पर सम व्यवहार ,स्नेह रखते है। भारतीय साहित्यकारों ने यहां तक कहा कि हिंद देश के निवासी सभी जन एक हैं, रंग –रूप– वेश– भाषा, खान –पान चाहे अनेक है।

आध्यात्मिक रूप से देखा जाए तो शिव के परंपरागत वेशभूषा एवं वाहन, गणेश जी के वेशभूषा एवं वाहन–सभी जीवो को ससम्मान व्यवहार प्रेम देने की प्राचीन प्रमाण सिद्ध करते है।

- भारतीय धर्म ग्रंथ उपनिषद् मे भी वर्णन है–
  अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम् ।
  उदार चरितान्तु,वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

यह मेरा है ऐसा लघु चिन्तक ही विचार करते है। उदार चित्तवाले के लिए सम्पूर्ण वसुधा के जीव जन्तु ,जड़– चेतन, नदी–पर्वत सभी में ईश्वर है सभी पूजनीय हैं। इसीलिए भारतीय अर्थव्यवस्था संतुलन बनाये रखे हुए है। अर्थात् आर्थिक स्रोत, संसाधन पर भी हमारा दृष्टिकोण दोहन का है ,न कि शोषण का । प्राकृतिक संतुलन में भी हमारे व्यवहार में समरसता दिखती है ।

सत्युग–द्वापर युग से वर्तमान कलयुग काल मे भी समरसता का भाव दिखता है। त्रेता युग में

भगवान राम का जीवन प्रसंग मे राम केवटराज गुह का कथा, वन गमन के समय वानर रीछ का संगत एवं प्रेम–भीलनी सबरी का शास्वत– प्रेम भाव विह्वल सबरी का जूठन बैर खाना, जटायू का भी दाह, क्रिया कर्म भी अपने प्रिय कुटुम्ब के परलोक गमन के बाद क्रिया कर्म जैसा किया जाता है, करना। लंका गमण के समय रामेश्वरम में लंका के महापंडित रावण के द्वारा पूजन, कार्य सिद्ध के लिये आशीर्वाद मांगना तथा रावण द्वारा आशीर्वाद देना , यह जानकर भी कि राम रावण के बीच का संबंध अरि के जैसा था। रावण के अंतिम समय में राम द्वारा लक्ष्मण को रावण से ज्ञान लेने के लिए रावण के पास भेजना ,यह सभी प्रमाण जो भारतीय धर्म साहित्य में मिलता है भारतीय समाज में समरसता को ही पुष्ट करनेवाला प्रमाण है। ठीक उसी प्रकार द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण का सुदामा की मित्रता भी समरसता का एक प्रमाण है। विद्यार्थी कुल में राजा का बालक हो या एक सामान्य प्रजा का बालक सबके साथ में एक समान व्यवहार गुरु के द्वारा तथा मित्रता भी कृष्ण सुदामा का भी एक जीता जागता प्रमाण है। भारतीय समाज सदियों से समरस रहा है इसका एक

उदाहरण है।
उपरोक्त तथ्यों से यह पता चलता है कि प्राचीन काल में विचारकों का कथन और कार्य समान था अर्थात् कार्य वही समाज के बीच होता था जो शास्त्र आधारित था
अथर्वेदानुसार –
सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि व ।
अन्योऽन्यमभीहरयत,वत्स जातिमिवाधन्या ।।
अर्थात वैचारिक दृष्टि से भी सभी मनुष्यों में समानता होनी चाहिए अर्थात पारस्परिक विद्वेष के जितने भी कारण है उनका नाश करके पारस्परिक सौहार्द्रतापूर्वक जीवनयापन में सभी को प्रवृत्त होना चाहिए । सभी प्रकार के कार्यों पर सबका समान अधिकार है अर्थात कोई भी व्यक्ति अपने स्वेच्छानुसार इच्छित कार्य का चुनाव कर सकता है। इसलिए कोई भी कार्य जाति लिंग वर्ण आदि के आधार पर मनमाने तरीके से किसी पर प्रत्यारोपित नहीं किया जाना चाहिए। सामाजिक संबंधों में परस्पर प्रेम और सहयोग की भावना का विकास हो ।

समाज में सभी कार्य सुचारित ,सुव्यवस्थित बंधुता प्रेम पर आधारित रूप मे चले इसीलिए चार वर्णों का वर्गीकरण किया गया। समाज मे सभी व्यक्ति के बीच प्रेम बंधुता ,स्वतंत्रता, समान अवसर था– जिसका उल्लेख गीता मे भी आता हैः
यथा चतुर्वरेण्यं मया दृष्टा गुण कर्म समाथिन। (इसे विद्वानो ने इस तरह भी व्याख्या किये हैं
जन्मना जायते शुद्रा सर्वे – कर्मणा (संस्कारात) भवेत द्विजः।
वेद पाठात भवेत बिप्ररू ब्रह्म् जानातिति ।।
(तुलसीदास जी भी सरल भाषा मे समझाये है –कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।
जो जस करहि सो तस फल चाखा ।।
इस तरह इस कथन की भी पुष्टि मिलती है । समाज को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सभी कर्म पर आधारित था जो किसी भी प्रकार का कार्य नहीं करता था वह दस्यू कहलाता था। सभी चार वर्णो के बीच प्रेम एवं बंधुत्व ,स्वतंत्रता सहभागिता ,समान अवसर था जो समरसता का आधार स्तम्भ है। कालांतर में चतुर वर्ण कर्मना न होकर जन्मना हो गया और व्यक्ति की पहचान कर्म आधारित न होकर समाज में जन्म आधारित होने लगा। जब से व्यक्ति की पहचान समाज मे जन्म आधारित हो गया ,वहीं से समाज में सामाजिक विद्वेष,जाति की प्रधानता ,छुआछूत जैसी रूढ़िवादिता जड़ धर करने लगी ।जैसे जैसे रूढ़िवादिता का जड़ गहरी होने लगी समाज में समरसता की भाव कमजोर होने लगा। समाज में जातीयता, छुआ–छूत व्यवहारिक रूप से धीरे– धीरे बढता गया ।

समाज में व्याप्त कुरीति दूर हो और समाज में समरसता आवे इसके लिए तीन–चार सौ वर्षों के पूर्व का इतिहास है। अनेक संत, विचारक, कथावाचक समाज के बीच में इस रूढ़िवादिता को दूर करने के लिए वैचारिक दृष्टिकोण से आगे आए ,परन्तु व्यवहारिकता में इसका घोर अभाव दिखने लगा। समाज में छुआछूत जैसी रूढ़िवादिता हटाने में शाहू जी महाराज, संत नामदेव, रामानुजन जी, रामानन्द स्वामी जी, संत गाडगे जी, गुरु गोविंद सिंह, बुद्ध महावीर जैसे संतो की शिक्षा से अलख जगाने का कार्य रहा ।

परन्तु सिर्फ वैचारिक क्रान्ति ही पर्याप्त रहने के कारण व्यवहारिकता में न आने के कारण समाज में असंतोष बढने लगा । इसी कारण से देश अपना परतंत्रता का शिकार रहा ।

महात्मा फूले, सावित्रीबाई फूले, स्वामी विवेकानंद, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर, नानाजी देशमुख, डाक्टर केशव बलिराम हेडगेवार ,माधव राव सदाशिव गोलवलकर, बालासाहब देवरस जी का विचार के साथ व्यवहारिक कार्य समाज मे आने लगा वैसे–वैसे समरसता का विलुप्त भाव पुनः जगने लगा ।

वर्तमान समय में सामाजिक समरसता का प्रयास वैचारिक समाज जागरण और व्यवहारिक कार्य जैसे स्पृश्यता का भाव संगत पंगत के कारण मिटने लगा ।

अंत में समाज में समरसता का भाव आज का नहीं यह सदियों से भारतीय समाज मे व्याप्त था, इस कारण भारत विश्व का सिरमौर था। अतः समाज में समरसता सामाजिक आवश्यकता न होकर राष्ट्रीय आवश्यकता है। हम सभी समरसता निर्माण मे अपने घर से प्रारम्भ कर अपनी भूमिका निभायें ।

(लेखक सामाजिक चिंतन हैं)

युवा शक्ति और सामाजिक समरसता

–निखिल रंजन

भारतीय सांस्कृतिक दर्शन की शाश्वत धारा में सामाजिक समरसता का वास्तविक अर्थ 'बहु भाव व एकत्व भाव है। सामाजिक समरसता का मतलब है 'बहु–भाव में एकत्व–भाव'। यह वह शक्ति है जो विविधता को एकता में बदल देती है एवं हर व्यक्ति को अपनी पहचान को भी बनाए रखता है। यह भाव आज की युवाओं में न सिर्फ प्रस्फुटित हो रही है, बल्कि बलवती भी हो रही है। सामाजिक समरसता का अर्थ केवल सह–अस्तित्व नहीं, बल्कि परस्पर सम्मान, आत्मीय संवाद और बिना किसी भेदभाव के सहयोग की भावना है, जहाँ 'स्व' का भाव 'सर्व' में विलीन हो जाता है।

भारत की सबसे बड़ी पूँजी उसकी युवा शक्ति है, क्योंकि आज देश की आधी से अधिक आबादी 35 वर्ष से कम आयु की है। यह केवल एक जनसांख्यिकीय आँकड़ा नहीं, बल्कि राष्ट्र की सामाजिक, वैचारिक और सांस्कृतिक दिशा तय करने वाली जीवंत शक्ति है। वर्तमान समय में, जब समाज जाति, धर्म, भाषा और संकीर्ण विचारधाराओं के आधार पर खंडित होने की गंभीर चुनौतियों से गुजर रहा है, तब सामाजिक समरसता को बनाए रखने और राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने में युवाओं की भूमिका अत्यंत निर्णायक हो जाती है।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही समरसता का भाव गहराई तक व्याप्त रहा है। हमारे मनीषियों और संतों ने यह सिखाया कि संपूर्ण सृष्टि एक ही ईश्वरीय चेतना का विस्तार है। भगवान राम का शबरी के जूठे बेर खाना और निषादराज को गले लगाना इस बात का प्रमाण है कि हमारे मूल संस्कारों में भेदभाव का कोई स्थान नहीं था। लेकिन मध्यकाल में विदेशी आक्रांताओं और अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने भारतीय समाज की एकता को गहरी चोट पहुँचाई। उन्होंने जाति–प्रथा और छुआछूत जैसी कुप्रथाओं को प्रोत्साहित किया ताकि समाज विभाजित रहे और उनका शासन निर्बाध चलता रहे।

आज भी स्वतंत्र भारत में कुछ शक्तियाँ दुष्प्रचार के माध्यम से समाज को तोड़ने का प्रयास कर रही हैं। ऐसे समय में युवाओं को समझना होगा कि यदि वे सजग नहीं हुए, तो यह विभाजन राष्ट्र की अखंडता को कमजोर कर देगा। इतिहास साक्षी है कि हर सामाजिक परिवर्तन और क्रांति का नेतृत्व युवाओं ने ही किया है। आज के युवा को केवल शारीरिक ऊर्जा नहीं, बल्कि 'विचारशील ऊर्जा' बनना होगा।

युवाओं की भूमिका तीन स्तरों पर महत्वपूर्ण है––**पहला, स्वयं के व्यवहार में समरसता लाने का।** उन्हें भिन्न मत, भाषा, वेश और जीवन–शैली को सहजता से स्वीकारना चाहिए और पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर संवाद को प्राथमिकता देनी चाहिए। **दूसरा, समाज में सेतु बनने का।** परिवार, मित्रमंडली और समुदाय में संवाद की संस्कृति विकसित करते हुए अफवाहों और नफरत के विरुद्ध तर्क व शांति से खड़ा होना चाहिए। **तीसरा, राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व निभाने का।** संवैधानिक मूल्यों–न्याय, समानता और बंधुता–को आचरण में उतारना और मतभेदों के बीच भी राष्ट्रीय एकता को सर्वोपरि रखना ही सच्ची देशभक्ति है।

समरसता का अर्थ है समाज के सभी तबकों को एक सूत्र में पिरोना, उन्हें समान अवसर देना और नैतिक मूल्यों के माध्यम से जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता को जड़ से समाप्त करना। समाज से जातिभेद मिटाना ही सामाजिक समरसता की सच्ची पहचान है।

स्वामी विवेकानंद, डॉ. हेडगेवार और डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे महापुरुषों ने यह सिखाया कि सामाजिक समता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी है। इसलिए युवाओं को यह

संकल्प लेना होगा कि वे नफरत के शोर को नहीं, बल्कि सद्भाव की उस शांत आवाज को बढ़ाएँगे जो भारत को विश्व में ऊँचा स्थान दिलाएगी। शिक्षा सामाजिक समरसता की सबसे मजबूत नींव है। इसका उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि संवेदनशील और जागरूक नागरिक का निर्माण करना है। शिक्षा प्रणाली को नैतिक शिक्षा और नागरिक बोध से जोड़ा जाना चाहिए। विद्यालय और विश्वविद्यालय संवाद, सहिष्णुता और सहयोग के केंद्र बनें, जहाँ छात्रों को यह सिखाया जाए कि विविधता कमजोरी नहीं, बल्कि भारत की सबसे बड़ी शक्ति है।

इस 21वीं शताब्दी का यह दशक 'जेन जी' का दशक कहा जा रहा है। यह पीढ़ी सामाजिक समरसता के विचार को आगे बढ़ाने में सबसे सक्षम साबित हो सकती है, क्योंकि यह तार्किक सोच को प्राथमिकता देती है और जाति या वर्ग के बजाय मानवीय भावनाओं के आधार पर संबंध बनाती है। यह पीढ़ी नयी सोच, तकनीक और नवाचार के माध्यम से भारत को एक नई दिशा दे रही है। सामाजिक समरसता के अनेक उदाहरण भारत की परंपरा में देखने को मिलते हैं। प्रयागराज कुंभ इसका जीवंत प्रमाण है, जहाँ सभी जाति, वर्ग और आयु के लोग बिना किसी भेदभाव के संगम में स्नान करते हैं। इस महाकुंभ में सबसे अधिक सक्रियता युवाओं की रही जिन्होंने देश–विदेश से आए श्रद्धालुओं की सेवा और सहयोग में अग्रणी भूमिका निभाई।

पिछले एक दशक में भारत के युवाओं ने सामाजिक ही नहीं, बल्कि आर्थिक परिवर्तन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। वर्ष 2016 में आरंभ हुई 'स्टार्टअप इंडिया पहल' ने युवाओं को नौकरी खोजने वाले से नौकरी सृजन करने वाला बना दिया है। आज भारत में 2 लाख से अधिक पंजीकृत स्टार्टअप हैं और देश दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा स्टार्टअप हब बन चुका है। इससे न केवल 21 लाख से अधिक रोजगार सृजित हुए हैं, बल्कि तकनीक, कृषि, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में नवाचार को भी नई दिशा मिली है।

आज भारत के मंदिरों और तीर्थों–उत्तर में केदारनाथ से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम तक, पूर्व में कामाख्या से लेकर पश्चिम में सोमनाथ और मध्य में उज्जैन से वाराणसी तक–हर जगह युवाओं की सक्रिय भागीदारी दिखती है। वे बिना किसी भेदभाव के दर्शन, सेवा और सामूहिक भोजन के माध्यम से समाज में एकता और सद्भाव का संदेश दे रहे हैं।

वर्तमान युग में सोशल मीडिया और तकनीकी क्रांति ने युवाओं को नई शक्ति दी है। लेकिन इस शक्ति का सकारात्मक उपयोग आवश्यक है। युवाओं को सोशल मीडिया पर फैलाई जाने वाली अफवाहों और विभाजनकारी सामग्री से बचना होगा। सोशल मीडिया संवाद और सद्भाव का माध्यम बने, संघर्ष और नफरत का नहीं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जैसी नई तकनीकों का उपयोग भी समाज में जागरूकता, शिक्षा और एकजुटता लाने के लिए किया जाना चाहिए।

अंततः, राष्ट्रवाद की चेतना के साथ यह स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्र सर्वोपरि है। सामाजिक समरसता वह कड़ी है जो राष्ट्र के विभिन्न वर्गों और समुदायों को जोड़कर एक अभेद्य दीवार बनाती है। युवाओं को अपनी ऊर्जा का उपयोग समाज को तोड़ने वाली शक्तियों के विरुद्ध करना चाहिए। जिस प्रकार नदियाँ अपनी पहचान खोकर सागर में विलीन होकर महान बनती हैं, उसी प्रकार हमें अपनी संकीर्ण पहचानों से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में एक होना होगा।

यदि युवा ठान लें, तो वे न केवल अपने समाज का, बल्कि पूरे विश्व का मार्गदर्शन कर सकते हैं। युवा शक्ति जब सामाजिक समरसता, आर्थिक सशक्तिकरण और राष्ट्रभक्ति के भाव से कार्य करेगी, तब भारत विश्व को "वसुधैव कुटुम्बकम्" का वास्तविक अर्थ सिखाने वाला राष्ट्र बनेगा – जहाँ समरसता ही धर्म होगी और राष्ट्र की उन्नति ही एकमात्र लक्ष्य।

''जाति–पांति के बंधन तोड़ो, भारत माँ से नाता जोड़ो।

एक रक्त है, एक प्राण है, हम सबका भारत महान है।''

(लेखक रा. स्व. संघ के दक्षिण बिहार के सह प्रांत प्रचार प्रमुख है)

सामाजिक समरसताः भारतीय दृष्टिकोण

—उदय कुमार

सामाजिक समरसता केवल एक शब्द नहीं, बल्कि यह देश की आत्मा और उसकी अखंडता का आधार स्तंभ है। जब हम इसे भारतीय दृष्टिकोण से देखते हैं, तो यह केवल समाजशास्त्र का विषय न रहकर राष्ट्र–निर्माण की एक अनिवार्य प्रक्रिया बन जाती है।

सामाजिक समरसता का अर्थ और वैचारिक पृष्ठभूमि

'समरसता' का शाब्दिक अर्थ है—समान रस होना। जिस प्रकार जल और दुग्ध मिलकर एक हो जाते हैं और उन्हें पृथक करना कठिन होता है, उसी प्रकार समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों और पंथों का एक राष्ट्र–भाव में विलीन हो जाना ही सामाजिक समरसता है।

भारतीय दृष्टिकोण में, समरसता 'समानता' (Equality) से एक कदम आगे की अवधारणा है। समानता अक्सर कानूनी या भौतिक होती है, जबकि समरसता आत्मीय और आध्यात्मिक होती है। यह ''सर्वे भवंतु सुखिनः'' और ''वसुधैव कुटुंबकम्'' के उस विचार पर आधारित है, जहाँ समाज का हर अंग दूसरे अंग के पूरक के रूप में कार्य करता है।

एकात्म मानववाद और समरसता

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' (Integral Humanism) के दर्शन में सामाजिक समरसता का गहरा विवेचन मिलता है। भारतीय चिंतन के अनुसार, समाज कोई 'कॉन्ट्रैक्ट' (अनुबंध) नहीं है, बल्कि एक 'सावयवं इकाई' (Organic Entity) है।

- **अंग और शरीर का संबंधः** जैसे शरीर के किसी एक अंग में चोट लगने पर संपूर्ण शरीर पीड़ा का अनुभव करता है, वैसे ही यदि समाज के किसी एक वर्ग (जैसे वंचित, वनवासी या पिछड़े वर्ग) के साथ अन्याय होता है, तो राष्ट्र शक्तिशाली नहीं हो सकता।
- **जातिवाद बनाम एकात्मताः** भारतीय दृष्टिकोण जातिगत पहचान को पूरी तरह नकारने के बजाय, उसे राष्ट्र–हित में गौण करने और जातियों के बीच के 'ऊंच–नीच' के भाव को समाप्त करने पर बल देता है।
- **ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य– विकृति और सुधारः** भारतीय समाज के इतिहास में सामाजिक कुरीतियाँ और छुआछूत जैसी कुप्रथाएं मूल सनातन धर्म का हिस्सा नहीं थीं, बल्कि वे कालचक्र और विदेशी आक्रमणों के दौरान आई सांस्कृतिक विकृतियाँ थीं।

भारतीय विचारकों जैसे स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, और डॉ. हेडगेवार ने सदैव इस बात पर जोर दिया कि जब तक हिंदू समाज भीतर से खंडित रहेगा, वह बाहरी चुनौतियों का

सामना नहीं कर पाएगा।

''यदि हम एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहना चाहते हैं, तो हमें अपने ही भाइयों को गले लगाना होगा जिन्हें हमने सदियों से उपेक्षित रखा है।'' – यह भाव राष्ट्रवादी समरसता का मूल है।

- **डॉ. अंबेडकर और राष्ट्रवादी धारा का संगमः** अक्सर डॉ. बी.आर. अंबेडकर के विचारों को राष्ट्रवाद के विरुद्ध खड़ा करने का प्रयास किया जाता है, परंतु भारतीय दृष्टिकोण उन्हें एक महान समाज सुधारक और 'राष्ट्र–निर्माता' के रूप में देखता है।
- **संवैधानिक नैतिकताः** बाबासाहेब ने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व (Liberty Equality, Fraternity) की बात की। राष्ट्रवादी चिंतन में 'बंधुत्व' ही समरसता का पर्याय है।
- **धर्मांतरण और राष्ट्रवादः** अंबेडकर जी ने जब धर्म परिवर्तन का निर्णय लिया, तो उन्होंने भारतीय मूल के 'बौद्ध धर्म' को चुना ताकि देश की जड़ों से जुड़ाव बना रहे। यह उनकी गहरी भारतीय चेतना का परिचायक था।

सामाजिक समरसता के प्रमुख स्तंभ

राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत समरसता की स्थापना हेतु निम्नलिखित चार स्तंभ अनिवार्य हैं–

क) सामाजिक न्याय (Social Justice)

बिना न्याय के समरसता संभव नहीं है। वंचित वर्गों को मुख्यधारा में लाने के लिए विशेष अवसर और आरक्षण जैसी व्यवस्थाएं तब तक आवश्यक हैं, जब तक कि समाज में 'समान धरातल' (Level Playing Field) तैयार न हो जाए।

ख) सांस्कृतिक गौरव (Cultural Pride)

समरसता केवल आर्थिक लेन–देन से नहीं आती। जब समाज का हर व्यक्ति यह महसूस करता है कि वह उसी महान संस्कृति का उत्तराधिकारी है जिसका ऋषि, मुनि और महापुरुष हिस्सा थे, तब समरसता प्रगाढ़ होती है।

ग) अंत्योदय (Antyodaya)

कतार में खड़े अंतिम व्यक्ति का उदय। जब तक विकास का लाभ सबसे निचले पायदान पर बैठे व्यक्ति तक नहीं पहुँचता, तब तक राष्ट्र की एकता खंडित रहती है।

घ) सेवा भाव (Spirit of Service)

समरसता 'अधिकार' से अधिक 'कर्तव्य' और 'सेवा' पर टिकी है। सेवा बड़प्पन के भाव से नहीं, बल्कि 'अपनत्व' के भाव से होनी चाहिए।

वर्तमान चुनौतियां और 'ब्रेकिंग इंडिया' विमर्श

आज के दौर में सामाजिक समरसता के सामने सबसे बड़ी चुनौती वे विदेशी और आंतरिक शक्तियां हैं जो 'पहचान की राजनीति' (Identity Politics) के माध्यम से समाज को बांटना चाहती हैं।

- **जातिगत विद्वेष–** राजनीतिक लाभ के लिए जातियों को एक–दूसरे के विरुद्ध भड़काना राष्ट्रवाद के लिए सबसे बड़ा खतरा है।
- **विदेशी नैरेटिव–** कई बार वैश्विक मंचों पर भारत की आंतरिक सामाजिक व्यवस्था को गलत ढंग से प्रस्तुत कर 'विखंडनकारी' प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया जाता है।

राष्ट्रवादी दृष्टिकोण कहता है कि हमें इन विमर्शों का उत्तर 'संवाद' और 'सह–अस्तित्व' से देना होगा।

निष्कर्ष–समरस समाज ही समर्थ राष्ट्र

निष्कर्षतः, सामाजिक समरसता कोई राजनीतिक नारा नहीं, बल्कि राष्ट्र की सुरक्षा और प्रगति की अनिवार्य शर्त है। एक खंडित समाज कभी विश्वगुरु नहीं बन सकता। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार, राष्ट्र केवल सीमाओं से नहीं बनता, बल्कि अपने नागरिकों के बीच के प्रेम और सामंजस्य से बनता है।

जब देश का प्रत्येक नागरिक, चाहे उसकी जाति या मत कोई भी हो, स्वयं को 'भारतमाता का पुत्र' समझकर दूसरे के प्रति संवेदनशील होगा, तभी वास्तविक सामाजिक समरसता का स्वप्न साकार होगा। 'समरस समाज, समर्थ भारत'– यही आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

(लेखक शोधकर्ता हैं)

वेदान्त दर्शन प्रणेताओं की दृष्टि में सामाजिक समरसता

–डॉ. दिवाकर कुमार कश्यप

भारतीय चिन्तन–परम्परा के सम्पूर्ण वैचारिक अधिष्ठान का एक महत्वपूर्ण आधार सामाजिक समरसता है। ऋग्वैदिक ऋचाओं से लेकर आचार्य–परम्परा की दार्शनिक साधना तक भारतीय चिन्तन मनुष्य को विखण्डन की नहीं, बल्कि एकात्मता और समरसता की अनुभूति कराता है। "संगच्छध्वं संवदध्वं" का वैदिक आह्वान, "वसुधैव कुटुम्बकम्" की औपनिषदिक दृष्टि और "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की लोकमंगल की कामना, ये सभी भारतीय परम्परा की उसी समरस चेतना के विविध स्वर हैं, जो समाज को संघर्ष से ऊपर उठाकर सहयोग, सह–अस्तित्व और आत्मीयता की दिशा में उन्मुख करते हैं। इसी व्यापक समरस सांस्कृतिक प्रवाह में वेदान्त दर्शन के महान प्रणेताओं का जीवन–दर्शन भारतीय समाज के आत्मिक पुनर्निर्माण का एक सुदृढ़ और प्रकाशमान स्तम्भ बनकर उद्भासित होता है।

इसी समरस परम्परा के मूर्त एवं जीवंत स्वरूप के रूप में आदि गुरु शंकराचार्य का जीवन–प्रसंग विशेष महत्त्व रखता है। एक बार वे काशी में गंगातट से स्नान कर श्री काशी–विश्वनाथ के दर्शन हेतु जा रहे थे। उसी मार्ग में विपरीत दिशा से एक चाण्डाल अपने चार कुत्तों सहित आ रहे थे। शंकराचार्य ने उसे मार्ग से हटने के लिए कहा – "गच्छ गच्छ"। इस पर उस चाण्डाल ने अत्यन्त गम्भीर और तात्त्विक प्रश्न उपस्थित किया– "आप किसे हटने को कह रहे हैं? इस शरीर को या उस आत्मा को जो इस शरीर में स्थित है? यदि शरीर को कह रहे हैं तो सभी शरीर पंचमहाभूतों से बने हैं – उनमें भेद कहाँ है? और यदि आत्मा को कह रहे हैं, तो आत्मा तो सर्वत्र एक ही ब्रह्मतत्त्व है – उसमें भेद कैसे सम्भव है?" इस प्रश्न–संवाद से शंकराचार्य को तत्काल आत्मबोध हुआ। उसी क्षण उन्होंने उस चाण्डाल को गुरु रूप में स्वीकार कर पाँच श्लोकों की रचना की, जो आगे चलकर मनीषापञ्चकम् के नाम से विख्यात हुई। इन

श्लोकों की प्रत्येक स्तुति के अन्त में शंकराचार्य का यह अमर उद्घोष गूँजता है – **"चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम।"** अर्थात् जिसने इस सृष्टि को अद्वैत–दृष्टि से देखना सीख लिया है, वह चाहे ब्राह्मण हो या चाण्डाल – वही मेरा सच्चा गुरु है। यह प्रसंग भारतीय सामाजिक चिन्तन में समरसता की सर्वाधिक सशक्त, साहसिक और क्रान्तिकारी अभिव्यक्ति बन जाता है।

शंकराचार्य की यह समरस दृष्टि केवल व्यवहारिक घटना–प्रसंग तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके सम्पूर्ण अद्वैत दर्शन का एक मौलिक तत्त्व है। 'निर्वाणषट्कम्' में वे आत्मा की उस सार्वभौमिक सत्ता की उद्घोषणा करते हैं जो समस्त सामाजिक भेद–भाव को निष्प्रभावी कर देती है – **"न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः, पिता नैव मे नैव माता न जन्मः।"** शंकराचार्य रचित निर्वाणषट्कम् का यह श्लोक मनुष्य को जन्म, जाति, कुल जैसे पहचानों से ऊपर उठाकर उस शुद्ध आत्मतत्त्व में प्रतिष्ठित करता है, जहाँ सभी मनुष्य समान रूप से चैतन्य–स्वरूप हैं। इसी तात्त्विक अनुभूति को वे 'विवेकचूडामणि' में स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

"जातिनीतिकुलगोत्रदूरगं।
नामरूपगुणदोषवर्जितम् ।।

" अर्थात् आत्मा जाति, कुल, गोत्र, नाम–रूप आदि से परे वह ब्रह्मतत्त्व है, जिसकी अनुभूति प्रत्येक प्राणी के भीतर समान रूप से स्थित है। इस प्रकार शंकराचार्य का जीवन–दर्शन समरस समाज की स्थापना का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है। यह आध्यात्मिक मुक्ति के मार्ग के साथ ही नैतिक पुनर्गठन और समरस समाज के निर्माण की आधारशिला भी है।

वेदान्त दर्शन की समरस परम्परा को आचार्य रामानुज ने सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में और अधिक सजीव एवं सुदृढ़ रूप प्रदान किया। रामानुजाचार्य ने सामाजिक सुधार के लिए समाज को भारत के वास्तविक विचार से परिचित करवाया। उन्होंने दलितों–पिछड़ों को गले लगाया। उस समय जिन जातियों को लेकर कुछ भेद–भाव की भावना थी, उन जातियों को उन्होंने विशेष सम्मान दिया। यादवगिरि पर उन्होंने नारायण मंदिर बनवाया, जिसमें दलितों को दर्शन–पूजन का अधिकार दिया। रामानुजाचार्य ने कहा– **"न जातिः कारणं लोके गुणाः कल्याण हेतवः"** अर्थात् संसार में जाति से नहीं, गुणों से कल्याण होता है। रामानुजाचार्य के गुरु श्री महापूर्ण ने एक बार दूसरी जाति के अपने एक मित्र का अंतिम संस्कार किया था। उस समय रामानुजाचार्य ने लोगों को भगवान श्रीराम की याद दिलाई थी। उन्होंने कहा कि अगर भगवान राम अपने हाथों से जटायु का अंतिम संस्कार कर सकते हैं, तो भेदभाव वाली सोच का आधार धर्म कैसे हो सकता है? जाति के नाम पर जिनके साथ भेदभाव होता था, रामानुजाचार्य जी ने उन्हें 'थिरुकुलथार' नाम दिया। थिरुकुलथार का अर्थ है लक्ष्मी जी के कुल में जन्म लेने वाला, श्रीकुल या दैवीय जन। रामानुजाचार्य स्नान से लौटते समय अपने शिष्य 'धनुर्दास' के कंधे पर हाथ रखकर चलते थे। इस आचरण के माध्यम से वे समाज में व्याप्त छुआछूत जैसी कुप्रथाओं को अस्वीकार करने और सामाजिक समरसता स्थापित करने की प्रेरणा देते थे।

वेदान्त की यह समरस परम्परा को अन्य वेदान्ताचार्यों ने भी अपने जीवन–दर्शन के द्वारा मूर्त रूप दिया। माध्वाचार्य के द्वैत दर्शन में प्रत्येक जीव को ईश्वर की कृपा का अधिकारी मानते हुए सेवा, करुणा और नैतिक कर्तव्य को सर्वोच्च स्थान दिया गया। उनकी परम्परा में विकसित हरिदास आन्दोलन ने सामाजिक सीमाओं को लाँघकर भक्ति को जन–जन तक पहुँचाया, जहाँ कनकदास जैसे वंचित वर्ग से आए संत सम्पूर्ण समाज के आध्यात्मिक पथप्रदर्शक बने। इसी प्रकार वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में समाज के सभी वर्गों को कृष्ण–भक्ति का समान अधिकार प्राप्त था। उनकी शिष्य–परम्परा में दामोदरदास, गोविन्ददास और सूरदास जैसे भक्त विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों से आए, परन्तु भक्ति के क्षेत्र में वे सभी समान प्रतिष्ठा के अधिकारी माने गए।

(लेखक भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद् में पोस्ट डॉक्टरल फेलो हैं)

सनातन धर्म यानी प्रकृति का सम्पूर्ण विज्ञान

—कृष्णकांत ओझा

भारत की ज्ञान परंपरा और सनातन धर्म में प्रकृति का चिंतन जिस व्यापकता से किया गया है वह वास्तव में ज्ञान और विज्ञान की चरम स्थिति है। भारतीय सनातन चिंतन का आधार गीता, उपनिषद एवं वेदांत को माना गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, ''जलाशयों में समुद्र, अचल हिमाचल, वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, उच्चैःश्रवा घोड़ा, हाथियों में ऐरावत, गौओं में कामधेनू, नागों में शेषनाग, जलचरों में अधिपति वरुण, पशुओं में मृगराज सिंह, पक्षियों में गरुड़ मैं हूं। पवित्र करने वालों में मैं वायु और शस्त्रधारियों में राम, मछलियों में मगरमच्छ, नदियों में गंगा हूं।''

इस प्रकार श्रीकृष्ण सृष्टि के आदि, अन्त व मध्य स्वयं को बताते हुए सोलह कलाओं से परिपूर्ण रूप माने गये हैं।

प्रकृति के विभिन्न रूपों में वृक्षों का सनातन धर्म में धार्मिक, आर्थिक व पर्यावरणीय दृष्टिकोण से अत्यंत महत्व है। वृक्ष के पुष्प जहां एक ओर ईश्वर—पूजा व शृंगार के अनिवार्य अंग हैं, वहीं दूसरी ओर छोटे—छोटे जीवों यथा तितलियों, भ्रमर इत्यादि के पोषक भी हैं। अश्वत्थ, तुलसी, बिल्व, रुद्राक्ष, कदम्ब तथा अन्य विविध वृक्षों का धार्मिक व पर्यावरणीय दोनों महत्व माने गये हैं। वैदिक धर्म—ग्रंथों में भी इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि पीपल पूज्य होने के साथ ही औषधि रूप में व पर्यावरणीय महत्व का कारक भी होता है।

वृक्षों में तुलसी की महिमा का वर्णन मिलता है। तुलसी के वृक्ष को घर में प्रतिष्ठित करने वाले मोक्ष के भागी माने गये हैं। तुलसी का वृक्ष मानव शरीर की औषधि के रूप में भी अपना अमूल्य योगदान देता है।

वृक्ष—वनस्पति की भांति पशु—पक्षी व अन्य जीव परिस्थितिकी तंत्र के नियंत्रण में अपनी भूमिका

निभाते हैं। भागवत धर्म में जीव संरक्षण के अनेक उद्धरण श्रीकृष्ण अपनी लीला रूप में दर्शाते हैं। भागवत महापुराण में वर्णित है कि ब्रजभूमि पर कालिया नाग के कारण यमुना का जल विषैला हो गया था। समस्त प्राणियों, जीव—जन्तुओं इत्यादि के प्राणों का हनन होने लगा। साथ ही साथ आस—पास के समस्त वृक्ष—वनस्पति, पशु—पक्षी व मानव जन के प्राण संकट में पड़ गये थे। श्रीकृष्ण ने इस समस्या का समाधान कालिया नाग को वहां से अन्यत्र भेज कर किया और इस प्रकार उन्होंने जल सम्पदा व जीवों के जीवन दोनों का ही उद्धार किया था। इसी प्रकार गजेन्द्र मोक्ष, धेनकासुर वध

इत्यादि प्रसंग भी लोक रक्षार्थ किये गये हैं। गौ का विशेष महत्व भागवत धर्म में वर्णित है। इस कारण इसमें विष्णु के सर्वोच्च पद को 'गोलोक' की संज्ञा दी गई है।

धार्मिक साहित्य में गौ का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण करते हुए कहा है कि गौ से प्राप्त पदार्थ मानव के लिये औषधि रूप में, कृषि जन्य कार्यों में व दैनिक जीवन में भी कई रूपों में उपयोग में आते हैं। अतः गौ 'मातृ' रूप में मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। श्रीकृष्ण भी 'गोपाल' के नाम से संबोधित किये गये हैं।

श्री हरि द्वारा गोवर्धन पर्वत की आराधना व पूजा का उद्धरण, उनके द्वारा विभिन्न रूपों में अवतार लेकर जीवों की रक्षा का उद्धकरण, प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व में चैतन्य व ईश्वरत्व की व्याप्ति मान उनके संरक्षण हेतु किये गये कार्यों के उद्धरण व मानवीय सद्गुणों की आवश्यकताओं और उनके प्रतिफलों के उद्धरण इत्यादि के द्वारा मनुष्य में अन्तः व बाह्म पर्यावरण की शुद्धि की सचेतना को जागृत करते हैं।

यजुर्वेद में समस्त पर्यावरण को शांति स्वरूप प्रदान करने की उद्घोषित रूप में प्रार्थना करते हुए कहा गया है–

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षंशान्तिः।
पृथिवीशान्तिरायः
शांतिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्ति।
विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शांतिः, सर्वशान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। (यजु. 36.17)

वैष्णवधर्म को दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषित करते हुए धर्म–ग्रंथों में कहा है कि यह मुख्यतः तीन तत्त्वों के योग से उद्भवित है। पहला तत्त्व 'विष्णु' है जिसका वैदिक साहित्य में 'सूर्य' के अर्थ में उल्लेख है।

इस रूप में भक्त अर्थात् जीव के हृदय व रोम–रोम में, इस संपूर्ण प्रकृति में ईश्वर व्याप्त है। दार्शनिक विवेचन में भागवत धर्म एक ऐसे धर्म के रूप में उभरता है जिसमें हर वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता है। इस कारण धार्मिक साहित्यकार भागवत धर्म को पर्यावरण व मानवता–संरक्षण की चेतना का स्रोत मानते हैं। भागवत धर्म के प्रकृति–विकासोन्मुखी रूख भारतीय मानस पर ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जगत पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सक्षम है।

भागवत धर्म–दर्शन अपने वास्तविक स्वरूप में मात्र उपदेशात्मक नहीं है वरन् भावनाओं की संवेदना से परिपूर्ण संपूर्ण रू है। श्री कृष्ण स्वयं समस्त बृजवासियों व गोकुलवासियों में रमण करते हुए गौओं व गोपीजनों के पालनकर्ता बनें। वृक्ष, नदियों, पर्वत, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी सभी को अपनी लीला का अविभाज्य पात्र बनाते हुए इनकी महत्ता को दर्शाया हैं। इनके कारुण्य स्वरूप का दर्शन हर लीलावर्णन में मिलता है।

भागवत धर्म एक स्पष्ट दृष्टिकोण मानव जाति को प्रदान करने का प्रयत्न करता है। यदि संपूर्ण धरा मनुष्य का घर है तो इसकी सुरक्षा, स्वच्छता, पवित्रता, पोषण व संरक्षण का उत्तरदायित्व भी उसी का है। महर्षि दत्तात्रेय स्वरूप में भगवान मानवीय सद्गुणों की प्रतिमूर्ति के साथ–साथ पर्यावरण–रक्षक के स्वरूप को भी प्रदर्शित करते हैं। भागवत–धर्म में इसी प्रकार महाराजा पृथु का उद्धरण भी प्रस्तुत किया गया है जो मानव–जीवन के लिये अनिवार्य माने गये चारों पुरुषार्थ के धनी थे। उनके द्वारा सृष्टि व जीवरक्षा के निमित्त किये गये कार्यों को भी भागवत–धर्मदर्शन में अतुलनीय स्थान प्रदान किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित है कि–

''इमं विवस्वते योगं
प्रोक्तवानहमव्ययम्।(श्रीमद्भगवद्गीता 4/1)

अर्थात् ''हमारा समस्त जीवन सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित और दूसरों को प्रकाश देने वाला हो।''

भागवत महापुराण में भगवान स्वयं को सर्वत्र व्याप्त कहते हैं।

भागवत में निहित विषयों को बताते हुए कहा गया है–

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।
(भा.म.पु. 2/10/1)

अर्थात् ''सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोधमुक्ति और आश्रय। इनमें से आश्रय को प्रधान तत्त्व माना गया है। आश्रय का अर्थ है– ''जीवों के शरण लेने योग्य भगवान्।'' अतः भगवान ही समस्त व्यक्त–अव्यक्त तत्त्वों के आश्रय दाता हैं। अतः भागवत दर्शन भागवत–धर्म के मूल स्वरूप को उजागर कर इसके व्यवहारिक व वास्तविक औचित्य को प्रकाशित करता है और इसे ''मानव संरक्षक धर्म'' के रूप में स्थापित करता है।

भागवत में श्रीकृष्ण स्पष्ट रूप में कहते हैं–

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः।
आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः।।
(भा.म.पु. 11/21/5)
अर्थात् ''पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत ही ब्रह्मा से लेकर पर्वत–वृक्ष पर्यन्त सभी प्राणियों के शरीरों का मूल कारण हैं। इस प्रकार वे शरीर की दृष्टि से तो समान हैं ही, सभी की आत्मा भी एक ही है।'' इस कारण समस्त जीवों के प्रति व प्राकृतिक घटकों के प्रति ईश्वरीयतत्व युक्तता का दृष्टिकोण अपनाकर, उसमें आत्मतत्व की व्याप्ति का उद्धरण देकर भागवत धर्म प्रकृति–संरक्षक धर्म रूप में द्रष्टव्य होता है। भागवत के भगवान् श्रीहरि कहते हैं–

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम्।
भूरात्मा सर्वभूतानिभद्र पूजापदानि में।।
(भा.म.पु. 11/12/42)
अर्थात् – ''सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और समस्त प्राणी ये सभी मेरी ही पूजा के स्थान है। अतः इन सभी में ईश्वरतत्व की व्याप्ति है।''भागवत धर्म कहता है कि ईश्वर भक्ति वह सचेतना है जो मनुष्य को स्वयं के वास्तविक स्वरूप से अवगत करा उसके अज्ञान के पर्दे को क्षीण कर देती है। सद्चरित्र व सद्गुण युक्त उत्तम विचारों को धारण करने वाला मनुष्य ही इस समाज व प्रकृति के प्रति अपने नैतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति के कर्तव्य को पूरित कर सकता है। सनातन धर्म सदैव ही धर्मयुक्त नियम, आचरण व कर्तव्य से पल्लवित व पोषित होता है। एक स्थान पर इसे उपमा देते हुए कहा गया है कि ''सदाचार एक कल्पवृक्ष के समान है। जिसका मूल है धर्म, तना है चरित्र, शाखाएँ हैं मानवीय कर्तव्य व सद्गुण उसके पत्ते हैं। सद्इच्छाओं की पूर्ति उसके फूल हैं और जीवनमुक्ति उसका अमृत फल है।'' अतः मनुष्य की अन्तः चेतना ही उसके बाह्य वातावरण व प्रकृति को निर्मित करती है। इस संबंध में श्रीमद् भगवद्गीता में मनुष्य के सात्विक व दैवी सम्पदा युक्त सद्गुणों का वर्णन दिया है, जिसके अनुसार अहिंसा, अभय, अन्तःकरण की सम्यक् शुद्धि, ज्ञान, योग में अवस्थिति, दान, दम, यज्ञ, तप, आर्जव (शरीर, इन्द्रिय व अन्तःकरण की सरलता), सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, जीवदया, अलोलुप्त्व, मार्दव (अन्तःकरण, वाणी व व्यवहार में कठोरता का अभाव), ह्री अर्थात् लज्जा, तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह इत्यादि दैवी सम्पदा से युक्त भागवत–धर्म के अन्तः गुणरुपी तत्त्व हैं। जो बाह्य–पर्यावरण के प्रति रक्षण व पोषण की चेतना सम्बन्धी अलख जगाने में सक्षम है।'

(लेखक स्वत्व के समूह सम्पादक हैं)

भारत में धरना–प्रदर्शन और हिंसक आंदोलनों के दौरान सार्वजनिक और निजी संपत्ति को भारी नुकसान होता है, जो अक्सर अरबों रुपये तक पहुंच जाता है। उदाहरण के लिए, किसान आंदोलन के कारण भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (NHAI) को रू. 2731.32 करोड़ से अधिक का नुकसान हुआ था। इसके अतिरिक्त, आंदोलन के कारण आर्थिक गतिविधियां ठप होने से भी भारी अप्रत्यक्ष नुकसान होता है।

करू बहियां बल आपनी, छोड़ बिरानी आस...

—अरुण ओझा

हमारे पुरखों ने बहुत पहले घोषणा की थी— स्वदेशो भुवन त्रयं। अर्थात यह देश तीनों भुवन के समान है। यहां का चिंतन रहा है—

अयम् निजः परोवेती गणना लघु चेतसाम।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।।

भारत ने दुनिया को यह विचार दिया कि पूरी दुनिया कुटुंब के समान हैं। जबकि पश्चिम के लोगों ने पूरी दुनिया को एक बाजार मान लिया। आज जिस प्रकार दुनिया बदल रही है उसमें स्व का बोध बहुत आवश्यक हो जाता है।

भारत को प्राचीनतम काल से ही विश्व गुरु माना जाता रहा है। यह उपाधि दुनिया के ऊपर कोई भौतिक या शारीरिक सत्ता स्थापित करके प्राप्त नहीं की थी। चीन में एक बहुत बड़े राजनयिक हुए – 'हूं सी'। बहुत दिनों तक राष्ट्रमंडल में भी रहे। उन्होंने एक बार कहा था कि भारतवर्ष ने लगभग 2 हजार वर्ष तक चीन के ऊपर शासन किया परंतु यह शासन सांस्कृतिक शासन था। भारत ने चीन के ऊपर कोई सत्ता स्थापित नहीं की वरन सांस्कृतिक रूप से हमारे ऊपर शासन किया है और हम इसके लिए भारतवर्ष के ऋणी हैं।

जब स्व के बोध के बारे में विचार करते हैं तो कई बातें सामने आती है। पहला विषय वस्तुओं के व्यापार का है। हमारे चिंतन में एक परंपरा रही कि जो कुछ भी एक मनुष्य के लिए न्यूनतम आवश्यक है, उसका उत्पादन होना चाहिए। 'व्हाट एवर इस बीइंग कंस्यूमड, मस्ट बी प्रोड्यूस्ड।' हमने न्यूनतम भोग और आवश्यक उत्पादन पर जोर दिया। परंतु वहीं पश्चिम कहता है, 'व्हाट एवर इस बीइंग प्रोड्यूस्ड मस्ट बी कंस्यूमड।' अर्थात जो कुछ भी उत्पादित हो रहा है, उसका उपभोग होना चाहिए। इसके लिए प्रचार माध्यमों से अनेक

प्रकार के भ्रामक विज्ञापन दिए गए। आज बाजार में कई प्रकार की ऐसी वस्तुएं हैं जिसकी कोई आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के तौर पर क्रीम, पाउडर और तमाम तरह के सौन्दर्य प्रसाधन हैं। परंतु क्या क्रीम लगाने से कोई काला व्यक्ति गोरा हुआ? क्या प्रोटीन अधिक खा लेने से किसी की भुजाएं बहुत मजबूत हुई? राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने एक कविता में भारतवर्ष के तरूणों से पूछा कि **नकली तेल फूल लगाकर अपना रूप सजाओगे या असली लहू का तेज अपने आनन पर चमकाओगे।**

इसके अतिरिक्त अपनी चीजों के प्रति ममत्व भाव भी है। एक माता अपने संतान के प्रति जैसा प्रेम रखती है, क्या वैसा प्रेम हम अपनी चीजों के प्रति प्रकट करते हैं? एक माता का कोई संतान व्याधियों से ग्रस्त हो या अन्य बच्चों की तुलना में कमजोर हो अथवा पढ़ने में मंदबुद्धि हो परंतु क्या वह माता अपने संतान के बदले दूसरे के संतान से प्रेम करने लगती है? कई कमियों के बावजूद वह अपने संतान के साथ प्रेम रखती है। वैसा ही प्रेम हर भारतीय नागरिक को अपनी वस्तुओं के प्रति भी रखना चाहिए।

स्व की दृष्टि में केवल वस्तुओं का ही क्रय–विक्रय नहीं है। इसमें अनेक बातें हैं जैसे अपनी भाषा। किसी भी राष्ट्र के विकास में उसकी भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अपितु भारत अनेक विविधताओं वाला देश है। यहां अनेक भाषाएं बोली जाती हैं परंतु फिर भी

एक संपर्क की भाषा होनी चाहिए। हमने हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया है। परंतु क्या उसको यह गौरव पूरे देश में प्राप्त है? दुनिया में एक छोटा सा देश है इजराइल। इजरायल अनेक वर्षों के संघर्ष के बाद दुनिया के क्षितिज पर खड़ा हुआ। इजरायल की सत्ता के पहले दिन ही उसके राष्ट्राध्यक्ष ने वरिष्ठ अधिकारियों की एक बैठक बुलाई। और उस बैठक में उन्होंने पूछा कि हिब्र (वहां की भाषा) को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने के लिए कितना समय लगेगा? अनेक अधिकारियों ने अनेक प्रकार के विचार दिए। कुछ ने दीर्घावधि की बात की तो कुछ ने अल्पावधि की। वहां एक अधिकारी थोड़ा मौन था। उसने कहा कि अगर अनुमति मिले तो इसी क्षण से हिब्र को इजरायल की राजभाषा बना सकते हैं। इजरायल के राष्ट्राध्यक्ष ने उसी समय उस व्यक्ति को इसका प्रमुख बनाया और उसी क्षण से वहां हिब्र ने राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त कर लिया। आज विश्व के सभी उन्नत राष्ट्र अपनी भाषा में अपना काम करते हैं। परंतु हम लोग अपनी भाषा के प्रति हेय दृष्टि रखते हैं। हम लोगों को अपनी भाषा के प्रति भी ध्यान देना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त एक बात वस्त्रों और भोजन को लेकर भी है। यहां की पारंपरिक वेशभूषा रही है। अपने देश में निर्मित वस्त्रों का ही उपयोग करना चाहिए। स्व के बोध में भोजन की शैली का भी महत्व है। अपने यहां छप्पन भोग है परंतु दुनिया के पास कितनी चीजें हैं? आज पिज्जा–बर्गर जैसे चीजों के प्रति बहुत आकर्षण है। एक बार आयरलैंड विश्वविद्यालय में अमेरिका के विदेश मंत्री हेनरी किसिंजर भाषण देने के लिए आए। वहां हेनरी किसिंजर ने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से पूछा कि आपलोग वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण से क्या समझते हैं? बच्चे चुप रहे। वे लोग तो हेनरी किसिंजर का भाषण सुनाने आए थे। हेनरी किसिंजर ने कहा, 'दुनिया के लोगों को जब भूख लगे तो उनको पिज्जा और बर्गर याद आ जाए। जब उनको प्यास लगे तो कोका–कोला और पेप्सी–कोला याद आ जाए। जब उन्हें संगीत सुनने की इच्छा हो तो माइकल जैक्सन याद आ जाए और जब नृत्य देखने की इच्छा हो तो उनको मैडोना याद आ जाए। इस स्थिति को हम पूरी दुनिया को ग्लोबलाइज्ड या वैश्वीकृत मान लेंगे।' और अंत में कहा, ''डियर स्टूडेंट्स ग्लोबलाइजेशन इस नथिंग बट अमेरिकनाइजेशन ऑफ द वर्ल्ड।''

आज शहरीकरण पर बहुत जोर है। ऐसे भवन बन रहे हैं, जहां 24 घंटे ऊर्जा की खपत हो रही है। हवा और प्रकाश का प्रवेश नहीं है। हमारे गांव के आंगन विलुप्त हो गए हैं। हमारे घरों में रहने वाले कुंए समाप्त हो चुके हैं। जिस प्रकार की स्थिति है हमें अपने भवन के बारे में भी विचार करना चाहिए। इसमें भी स्व का प्रकाश आवे। कुल मिलाकर समाज जीवन के सभी क्षेत्रों में हमें स्व का भाव प्रकट करना होगा।

अपनी न्याय–व्यवस्था, प्रशासन, आर्थिक–व्यवस्था इत्यादि विषयों में स्व के बारे में विचार करना पड़ेगा। वर्तमान के शासन में कुछ बातें सकारात्मक हो रही है। भारतीय दंड संहिता के स्थान पर भारतीय न्याय संहिता आई है। श्रमिक क्षेत्र में पहले औद्योगिक विवाद संहिता थी अब नई सरकार औद्योगिक संबंध संहिता ले आई है। चीजें बदल रही हैं परंतु बहुत सारी चीजों को बदलना अभी बाकी है। और स्व के आधार पर जब इन सब बातों का विचार करेंगे तो भारत विश्व गुरु का स्थान प्राप्त कर सकता है। हमारे यहां फक्कड़ संत कबीर हुए हैं। उन्होंने एक स्थान पर कहा है,

करू बहियां बल आपनी, छोड़ बिरानी आस।
जाके आंगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास।।

कबीर कहते हैं कि अपनी भुजाओं में स्वयं बल पैदा कर अपने कार्य संपन्न कीजिए। दूसरे के भरोसे रहना उचित नहीं है। जैसे जिसके घर नदी बह रही हो उसका प्यासा रह जाना उचित नहीं है।

वास्तव में यहां कुछ उपलब्ध है। फिर हम दूसरों की ओर क्यों देख रहे हैं? हम स्व की ओर देखें। और इस आधार पर हम चले तो विश्व गुरु का स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

(पूर्व अखिल भारतीय संयोजक, स्वदेशी जागरण मंच)

कुटुम्ब प्रबोधन से सांस्कृतिक पुनर्जागरण

—रजनी शंकर

देर शाम का वक्त है । टीवी स्क्रीन पर महानगरीय जीवन के कुछ दृश्य चल रहे हैं। प्राथमिक विद्यालय में पढ़ने वाले अपने बच्चे के परफॉर्मेंस, विशेष कर हिंदी में प्रदर्शन पर माता–पिता (कोंकणा सेन शर्मा और अजय देवगन) प्रसन्न होने से ज्यादा भौंचक नजर आ रहे हैं । ऐसे कई दृश्य टीवी स्क्रीन पर उभरे जिसमें माता–पिता अपने छोटे से बालक के अंदर हो रहे परिवर्तन से अचंभित थे, क्योंकि परिवर्तन बड़ा ही आश्चर्यजनक और सकारात्मक था, जो रोजमर्रे की जिंदगी में सहसा अवतरित हुए शायद कथित 'चाचा जी' (परेश रावल) की देन थी । महानगरीय जिंदगी में बच्चे के अंदर सहसा ऐसा परिवर्तन, उसकी माता–पिता की सोच से परे था। छोटे से बालक में आये सकारात्मक परिवर्तन की तह तक जाने पर पता चला, यह सब चाचा जी (बच्चे के कथित दादा जी) की संगत, प्रेरणा और नये संस्कारों के परिचय से हो रहा था।

सिनेमा आगे बढ़ा । स्क्रीन पर गणपति महोत्सव का दृश्य चलने लगा। इस उत्सव ने अड़ोस–पड़ोस, बड़े–बुजुर्ग और बच्चों के बीच भावनात्मक स्तर पर एक ऐसा ताना–बाना बुना कि कथित 'चचा जी'के गणपति विसर्जन में गुम हो जाने के बाद उनके नहीं होने का एहसास सबों को सालने लगा। बेचौनी से कथित चाचा जी की चल रही तलाश, दरअसल परिवार और समाज में कुटुंबों के महत्व को ही रेखांकित करती है। इस कहानी में कुटुम्बों की उपस्थिति से मानवीय मूल्यों का बालपन से ही संवर्धन के साथ–साथ व्यस्कों में भी संवेदनात्मक स्तर पर रिश्तों की अहमियत का यह एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर रहा था । सही मायने में 'अतिथि तुम कब जाओगे' सिनेमा का यह कथानक, कुटुम्ब प्रबोधन का बड़ी ही संजीदगी से महत्वपूर्ण पाठ पढ़ा गया ।

पुरानी भारतीय सनातन संस्कृति पर नजर डालें तो परिवार महज रिश्तों का बंधन नहीं था। ना ही कुछ लोगों के एक ही छत के नीचे रहने को परिवार की संज्ञा दी जाती थी। दरअसल परिवार की कोख में संस्कार, परंपरा और सामाजिक मूल्यों का समावेश हुआ करता था। परिवार का हर सदस्य अपनी खास भूमिका के लिए जाना जाता था। जेठानी, देवरानी, जेठ, देवर, पति, पत्नी,

सास, ननद, मामा, मामी, नाना, नानी और सबसे ऊपर घर के मालिक, सभी की अपनी पहचान होती थी। कोई बाहर कमाता तो कोई खेतों में फसल उगाता और किसी के जिम्मे परिवार को साथ ले कर चलने की जिम्मेदारी। घर के बच्चे अलग अलग रिश्तों की सुगंध से पले बढ़े होते थे। दादी की कहानियां, नानी की लोरियां और ताऊ के किस्से ये सब–कुछ होते थे बच्चों के हिस्से में। संयुक्त परिवार व्यवस्था ने लंबे समय तक समाज को सम्हाला, सुरक्षा दी और और सामूहिकता के साथ एक दूसरे का ख्याल रखने और अपनो की खुशी के लिए खुद को न्योछावर करने का भाव दिया। सबसे बड़ी बात कि, इस न्योछावर में भी अतिरेक खुशी हुआ करती थी।

भारतीय समाज की आत्मा लंबे समय तक संयुक्त परिवार की संरचना में निवास करती रही । यह केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं थी, बल्कि संबंधों, उत्तरदायित्वों और मूल्यों से निर्मित एक जीवंत संस्था थी, जहाँ जीवन का प्रत्येक पक्ष–संस्कार, अनुशासन, सहनशीलता और सुरक्षा,सहज रूप से विकसित होता था। संयुक्त परिवार व्यक्ति को "मैं" से पहले "हम" की चेतना से परिचित कराता था। यहाँ जीवन केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक अनुभव होता था।

समय के साथ परिस्थितियाँ बदलीं। औद्योगीकरण, शहरीकरण, शिक्षा, रोजगार की गतिशीलता और आधुनिक जीवन–शैली ने पारंपरिक पारिवारिक ढाँचे को चुनौती दी। परिणामस्वरूप समाज संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर अग्रसर हुआ। यह परिवर्तन केवल आवासीय या आर्थिक नहीं है, बल्कि इसके प्रभाव मनुष्य के मनोविज्ञान, संबंधों और सामाजिक चेतना तक गहराई से पहुँचे हैं। ऐसे समय में कुटुंब प्रबोधन–अर्थात परिवार को समझने, सँवारने और संतुलित रखने की प्रक्रिया–अत्यंत आवश्यक हो गई है।

आधुनिक व्यक्ति अपनी पहचान, अपने निर्णय और अपने जीवन की दिशा स्वयं तय करना चाहता है। यह आकांक्षा स्वाभाविक और कई अर्थों में सकारात्मक भी है। एकल परिवार ने निजता, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के नए अवसर प्रदान किए हैं। विशेषकर स्त्रियों और युवाओं के लिए यह परिवर्तन सशक्तिकरण का माध्यम बना है। किंतु इसके साथ ही संयुक्त परिवार का वह भावनात्मक सुरक्षा कवच भी कमजोर पड़ा है, जो संकट के समय व्यक्ति को अकेला नहीं पड़ने देता था। पहले दुख, असफलता और तनाव साझा होते थे। आज व्यक्ति अक्सर इन्हें भीतर ही भीतर झेलता है। संयुक्त परिवार की सबसे बड़ी शक्ति उसका भावनात्मक संतुलन था। बुजुर्गों का अनुभव, स्त्रियों की संवेदनशीलता और युवाओं की ऊर्जा मिलकर जीवन को स्थिरता प्रदान करते थे। एकल परिवार में यह संतुलन कई बार टूटता दिखाई देता है। सीमित दायरे में अपेक्षाएँ बढ़ जाती हैं और संवाद कम हो जाता है। ऐसे में कुटुंब प्रबोधन का अर्थ केवल परिवार को जोड़े रखना नहीं, बल्कि परिवार को संवाद, सह–अस्तित्व और पारस्परिक समझ की इकाई बनाना है।

बच्चों के पालन–पोषण में यह परिवर्तन और भी स्पष्ट है। संयुक्त परिवार में बच्चा अनेक संबंधों के बीच पलता थाः दादा–दादी, चाचा–चाची, मौसी–मामा–हर रिश्ता उसे जीवन का एक नया पाठ सिखाता था। संस्कार उपदेश के रूप में नहीं, अनुभव के रूप में मिलते थे। एकल परिवार में यह संबंध–संसार सिमट गया है। बच्चों का अधिकांश समय अब स्क्रीन, मशीनों और औपचारिक संस्थाओं के साथ बीतता है। इससे सुविधाएँ तो बढ़ी हैं, पर संवेदनात्मक गहराई का अभाव भी स्पष्ट है। कुटुंब प्रबोधन का उद्देश्य बच्चों को केवल साधन उपलब्ध कराना नहीं, बल्कि उन्हें संबंधों की गरिमा, त्याग और सामूहिकता का बोध कराना है।

आज पीढ़ियों के बीच संवाद की कमी एक गंभीर समस्या बन चुकी है। बुजुर्ग स्वयं को उपेक्षित अनुभव करते हैं, जबकि युवा उन्हें "पुराने विचारों" का प्रतीक मानकर अनसुना कर देते हैं। यह दूरी केवल आयु की नहीं, दृष्टिकोण की है। कुटुंब प्रबोधन का पहला चरण इसी दूरी को कम करने का प्रयास है। **संवाद, सहनशीलता और परस्पर सम्मान–यदि ये तीनों परिवार में सुदृढ़ हों, तो संरचना चाहे संयुक्त हो या**

एकल, परिवार जीवंत बना रह सकता है।

एकल परिवार में स्त्री की भूमिका नए संदर्भों में उभरी है। जहाँ संयुक्त परिवार में वह कई बार परंपरागत अपेक्षाओं के बोझ तले दब जाती थी, वहीं एकल परिवार में उसे निर्णय की स्वतंत्रता और आत्मसम्मान मिला है। यह परिवर्तन सकारात्मक है, किंतु इसके साथ जिम्मेदारियों का दबाव भी बढ़ा है। कार्यस्थल और गृहस्थी के दोहरे दायित्वों के बीच स्त्री का मानसिक संतुलन प्रभावित होना स्वाभाविक है। कुटुंब प्रबोधन का दायित्व यहाँ केवल स्त्री पर नहीं, बल्कि पुरुष और समाज दोनों पर है कि वे समान सहभागिता और सहयोग की संस्कृति विकसित करें।

तकनीक ने पारिवारिक संबंधों की प्रकृति को भी बदल दिया है। मोबाइल और सोशल मीडिया ने संपर्क तो बढ़ाया है, पर संवाद को संकुचित कर दिया है। एक ही घर में रहते हुए भी परिवार के सदस्य अपने–अपने डिजिटल संसारों में व्यस्त रहते हैं। भावनाओं की जगह सूचनाएँ और संवेदनशीलता की जगह त्वरित प्रतिक्रियाएँ ले रही हैं। कुटुंब प्रबोधन की सबसे बड़ी चुनौती यही है कि तकनीक संबंधों को तोड़ने का नहीं, बल्कि जोड़ने का माध्यम बने। साथ बैठकर भोजन करना, बातचीत करना और एक–दूसरे के जीवन में रुचि लेना–ये साधारण से दिखने वाले प्रयास गहरे परिवर्तन ला सकते हैं।

यह भी स्वीकार करना होगा कि संयुक्त परिवार आदर्श होते हुए भी पूर्णतः संघर्षमुक्त नहीं थे। वहाँ भी मतभेद, असमानताएँ और दबाव मौजूद थे। इसलिए एकल परिवार को केवल विघटन का प्रतीक मानना उचित नहीं। समस्या संरचना में नहीं, बल्कि संतुलन के अभाव में है। स्वतंत्रता यदि उत्तरदायित्व से विहीन हो जाए, तो वह संबंधों को कमजोर कर देती है। कुटुंब प्रबोधन का उद्देश्य इसी संतुलन को साधना है।

कुटुंब प्रबोधन की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संयुक्त परिवार एक प्राकृतिक सपोर्ट सिस्टम था। व्यक्ति का तनाव साझा होता था और भावनात्मक सुरक्षा सहज रूप से उपलब्ध रहती थी। एकल परिवार में यह दायरा सीमित हो गया है। निजता और स्वतंत्रता के साथ–साथ मानसिक दबाव भी बढ़ा है। कई बार व्यक्ति भीड़ में रहते हुए भी अकेलापन महसूस करता है। कुटुंब प्रबोधन की चुनौती यहीं से शुरू होती है।

पहले संस्कार पीढ़ी दर पीढ़ी स्वाभाविक रूप से स्थानांतरित हो जाते थे। आज उन्हें सचेत रूप से सिखाना पड़ता है। आधुनिक मन स्वतंत्रता को प्राथमिकता देता है और परंपरा को बोझ समझ लेता है। कुटुंब प्रबोधन का उद्देश्य परंपरा को थोपना नहीं, बल्कि उसे समयानुकूल समझ और संवाद के साथ आगे बढ़ाना है।

बच्चों के संदर्भ में यह चुनौती और भी गहरी है। उनका सामाजिक संसार सीमित हो गया है, जिससे धैर्य और भावनात्मक संतुलन प्रभावित हो रहा है। कुटुंब प्रबोधन का लक्ष्य बच्चों में भावनात्मक बुद्धिमत्ता विकसित करना है, ताकि वे संबंधों को केवल सुविधा नहीं, संवेदना के स्तर पर समझ सकें।

निष्कर्ष

संयुक्त परिवार से एकल परिवार की यात्रा भारतीय समाज का स्वाभाविक चरण है। इसे रोका नहीं जा सकता, पर दिशाहीन भी नहीं छोड़ा जा सकता। आवश्यकता है ऐसे सांस्कृतिक बोध की, जो परिवार को केवल साथ रहने की इकाई नहीं, बल्कि साथ जीने की चेतना बनाए। कुटुंब प्रबोधन इसी चेतना का नाम है–जहाँ परिवार आकार में छोटा हो सकता है, पर मन से विशाल जहाँ दीवारें कम हों, पर दिलों के बीच की दूरी न हो। यही हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौती भी है और सबसे बड़ी जिम्मेदारी भी।

(लेखिका यूएनआई की वरीय संवाददाता हैं)

- **कुटुम्ब प्रबोधन भोजन, भजन, भाषा, भूषा, भवन, और भ्रमण–के माध्यम से परिवार को संस्कारी व सामूहिकता से जोड़ने का अभियान है, ताकि 'मैं' से आगे बढ़कर 'हम' की भावना विकसित हो।**

सांस्कृतिक पुनर्जागरण–कुटुम्ब प्रबोधन

– डॉ. शोभित सुमन

भारतीय सभ्यता के हजारों वर्षों के इतिहास में 'कुटुम्ब' (परिवार) का विशेष महत्व रहा है। यह केवल एक सामाजिक संस्था नहीं अपितु राष्ट्र की वह आधारभूत इकाई रही है जिसने समाज को स्थिरता और संस्कारों की ऊर्जा प्रदान की है। वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में जहां भौतिकवाद और आत्मकेन्द्रित विचारधाराएं हावी हो रही हैं। समाज में अलग–अलग प्रकार की भ्रांतियां और वैमनस्यता फैल रही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने कुटुम्ब प्रबोधन के माध्यम से भारतीय जीवन मूल्यों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है। साथ ही भारतीय जीवन मूल्य में एक समरस समाज की परिकल्पना का आह्वान किया है। एकल भारत की सांस्कृतिक विरासत में श्एकत्वश का भाव निहित है। इसके अनुसार समाज के हर वर्ग, जाति और पंथ के बीच भेदभाव को समाप्त कर एक साझा सांस्कृतिक पहचान पर जोर दिया जाना चाहिए।

'कुटुम्ब' का अर्थ है परिवार और 'प्रबोधन' का अर्थ है 'जागृति'। कुटुम्ब प्रबोधन का उद्देश्य परिवारों को अपनी जड़ों, संस्कृतियों, परम्पराओं और मूल्यों के प्रति सचेत करना है। आज के युग में संयुक्त परिवार का ढांचा बिखरता जा रहा है और परिवार की संकल्पना में बदलाव दिख रहा है। आधुनिक युग में तकनीक के कारण एक ही छत के नीचे रहने वाले सदस्य भी आपस में संवादहीनता का शिकार हो रहे हैं। कुटुम्ब प्रबोधन का अभियान केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं है अपितु यह परिवार के भीतर आपसी प्रेम, श्रद्धा, करूणा और सामंजस्य बढ़ाने का एक जीवंत माध्यम है। संघ ने अपने शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में समाज परिवर्तन के लिए पंच परिवर्तन का सूत्र वाक्य दिया है। कुटुम्ब प्रबोधन के अलावा इसमें

सामाजिक समरसता, स्वआधारित जीवन और पर्यावरण संरक्षण और नागरिक कर्तव्य की बात की गई है। इन पांचों स्तंभों की जड़ें 'कुटुम्ब' में ही निहित हैं, क्योंकि संस्कारवान परिवार ही समाज और राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझ सकता है।

भारतीय जीवन दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत पर आधारित है। कुटुम्ब प्रबोधन भी इसी सूक्ष्म स्तर पर वैश्विक भाईचारे की तैयारी है। इसमें मुख्य रूप कुछ विचारों को आग्रही रखा गया है। जिसमें भजन और भोजन साथ में करने का विचार दिया गया है। सप्ताह में कम से कम एक बार पूरा परिवार मोबाइल और टीवी से दूर रहकर साथ बैठकर भजन और भोजन दोनों करे। यह सामूहिक समय संबंधों की प्रगाढ़ता को बढ़ाता है। यहां संस्कारों के हस्तांतरण की बात की जाती है। इसमें परिवार को पहली पाठशाला माना गया है जहाँ 'धर्म' (कर्तव्य), 'अर्थ' (समृद्धि), 'काम' (इच्छाएं) और 'मोक्ष' (मुक्ति) के बीच संतुलन सीखा जाता है। हमारे समाज में मातृशक्ति को शक्ति स्वरूपा माना गया है। इसके लिए मातृशक्ति का सम्मान समाज में और अधिक हो। भारतीय समाज की परिकल्पना में नारी को केवल परिवार का सदस्य नहीं बल्कि परिवार की धुरी माना गया है। ''मातृशक्ति सम्मेलन'' जैसे आयोजनों के माध्यम से महिलाओं को समाज जागरण की मुख्य भूमिका में लाया जा रहा है। बड़ों का आदर और छोटों को स्नेह दिया जाए। संयुक्त परिवार की व्यवस्था में दादा–दादी और नाना–नानी के सानिध्य से अगली पीढ़ी को अनुभवी ज्ञान और नैतिक शिक्षा प्राप्त होती है।

आधुनिक समाज में पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण और अत्यधिक भौतिकवाद ने पारिवारिक मूल्यों को खतरे में डाल दिया है। श्कुटुम्ब प्रबोधनश इन चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है जिसमें परिवार के सदस्यों को तकनीक के दास बनने के बजाय उसके विवेकपूर्ण उपयोग के लिए प्रेरित किया जाता है। साथ ही इसमें संवाद की पुनर्स्थापना पर बल दिया गया है। राजनीति, फिल्में और क्रिकेट से परे जाकर परिवार के पूर्वजों, कुल देवी–देवताओं और राष्ट्रीय गौरव के विषयों पर चर्चा करना इसका महत्वपूर्ण हिस्सा है। कुटुम्ब प्रबोधन का दायरा केवल अपने घर तक सीमित नहीं है। 'कुटुम्ब मित्र' के माध्यम से पड़ोसी परिवारों को भी साथ लाने का प्रयास हो ताकि समाज में समरसता और सुरक्षा का भाव बढ़े।

भारतीय चिंतन जिस भारतीय समाज की परिकल्पना करते है, वह स्वत्व के बोध से युक्त है। यह समाज किसी विदेशी दृष्टि से नहीं बल्कि अपनी सनातन राष्ट्रीय दृष्टि और मूल्यों से संचालित होगा। ऐसा समाज जहां परिवार टूटे नहीं, बल्कि एक–दूसरे का संबल बनें, जहां आर्थिक प्रगति तो हो, लेकिन वह संस्कारों की बलि देकर न आए। समाज में प्रत्येक नागरिक अपने अधिकारों से पहले अपने कर्तव्यों के प्रति सजग हो।

कुटुम्ब प्रबोधन कोई अल्पकालिक अभियान नहीं बल्कि राष्ट्र निर्माण की एक सतत् प्रक्रिया है। जब परिवार सुदृढ़ होंगे तभी समाज सशक्त होगा और एक सशक्त समाज से ही परम वैभव वाले राष्ट्र का निर्माण होगा। कुटुम्ब प्रबोधन की यह पहचान भारतीय जीवन मूल्यों को आधुनिक कालखंड में प्रासंगिक बनाकर भारत को पुनः विश्व गुरु के पद पर प्रतिष्ठित करने की दिशा में एक निर्णायक कदम है।

संपूर्ण दुनिया को भारत के लोग हीं आलोकित कर सकते हैं। प्रत्येक हिंदू को एक आदर्श नागरिक बनाकर उनमें राष्ट्रीय भाव को जगाना है। भारत के पुनर्निर्माण में रामराज्य, सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाना है। भारत हमेशा से 'शुभं करोति कल्याणम्' की बात करता है जिसमें सिर्फ भारतीयों के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के कल्याण की बात की गई है।

(मीडिया अध्येता)

आर्थिक प्रगति का आधार है 'स्व' का बोध

-सुरेश रुंगटा

'स्व' का बोध स्वदेशी–विचार की प्रेरणा से उत्पन्न होता है। 'स्व' यानी अपनापन की गहरी समझ, स्वदेशी अपने देश व संस्कृति के प्रति निष्ठा को जन्म देती है। जहां 'स्व' का बोध आत्मा का जागरण है, वहीं स्वदेशी उस बोध से निकली राष्ट्र भक्ति और आत्म–निर्भरता की भावना है, जो अपने देश में उत्पादित वस्तुओं, संस्कृति व विचारों के उपयोग के अटूट विश्वास को जागृत करती है। आज के दौर में स्वदेशी की जब भी चर्चा होती है तो एक ही बोध होता है– अपनी माटी, अपनी माटी की उपज, अपनी संस्कृति और अपनी परंपराएं ..... साथ ही स्वदेशी मतलब– अपने देश में बनी चीजें और उनका ही उपयोग। भारत की आर्थिक प्रगति का आधार 'स्व' का बोध यानी आत्मनिर्भरता और आत्म विश्वास की भावना है, जिससे क्षमताओं एवं संसाधनों (कृषि, लघु उद्योग, सेवाएं) के, समुचित उपयोग से देश को वैश्विक स्तर पर सशक्त बनाना है, ताकि सामाजिक कल्याण को बढ़ावा मिल सके। विकास का अर्थ केवल आर्थिक समृद्धि नहीं, बल्कि वास्तविक विकास है। जिससे मनुष्य, परिवार, समाज, गांव शहर, प्रांत और देश का संतुलित उत्थान संभव हो। भारत की विकास की अवधारणा आत्म नहीं, समाज केन्द्रित रही है तथा आज के वैश्विक परिदृश्य में यही दृष्टि सबसे अधिक प्रासांगिक है।

भारत एक प्राचीन सभ्यता और विविधताओं से भरा राष्ट्र रहा है। जिसने अपने लंबे इतिहास में स्वदेशी उत्पादों और कुटीर उद्योगों के जरिए आत्मनिर्भरता और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया है। आधुनिक काल में विकसित भारत की कल्पना केवल आर्थिक प्रगति तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी उन्नति भी शामिल है। इस आलोक में स्वदेशी उत्पादों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। स्वदेशी उत्पादन न केवल भारतीय परंपरा, संस्कृति और कला का परिचायक है, बल्कि वे स्थानीय संसाधनों और कौशल के प्रयोग से तैयार होकर ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में रोजगार सृजन का माध्यम बनते हैं। ''आत्मनिर्भर भारत अभियान'', ''मेक इन इंडिया'' और ''वोकल फॉर लोकल'' जैसी सरकारी पहले इस दिशा में स्वदेशी

उद्योगों को सशक्त बनाने का कार्य कर रही हैं । साथ ही डिजिटल प्लेटफार्म और ई–कार्मस ने स्वदेशी उत्पादों को वैश्विक मंच पर पहचान दिलाने का अवसर प्रदान किया है।

भारत सदियों से विश्व में अपनी समृद्ध संस्कृति परंपराओं और विविधताओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। भारतीय सभ्यता का सबसे बड़ा आधार उसके स्वदेशी उत्पाद और कुटीर उद्योग रहे हैं। जिन्होंने न केवल भारतीय अर्थव्यवस्था को बल प्रदान किया, बल्कि समाज को आत्मनिर्भरता तथा व्यक्ति को सबल बनाने का काम किया है। प्राचीन काल में भारत को 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। यहां के हस्तशिल्प, वस्त्र, कृषि आधारित उत्पाद और धातु–कला विश्व भर में निर्यात किये जाते थे। स्वतंत्रता संगाम के समय महात्मा गांधी ने 'स्वदशी आंदोलन' के माध्यम से विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर विशेष बल दिया था। इस आंदोलन ने भारतीय जनमानस में आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान की भावना जागृत की। लेकिन आजादी के बाद स्वदेशी की अवधारणा में धीरे–धीरे ह्रास होता चला गया और इसके दुष्परिणाम अर्थव्यवस्था में भी दिखने लगे। 21वीं सदी के भारत में जब देश 'विकसित भारत' की परिकल्पना को साकार करने की दिशा में आगे बढ़ रहा है, तब स्वदेशी उत्पादों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है। स्वदेशी उत्पाद केवल आर्थिक विकास का साधन ही नहीं, वे सांस्कृतिक धरोहर और सामाजिक सशक्तिकरण के भी प्रतीक हैं।

भारत की आर्थिक और सामाजिक ढांचे में स्वदेशी उत्पादों की जगह हमेशा विशेष रही है। प्राचीन काल में भारतीय वस्त्र, मसाले, धातु और हस्तशिल्प यूरोपीय देशों तक निर्यात किए जाते थे। इसी वजह से भारत को अंतराष्ट्रीय व्यापार का बड़ा केन्द माना जाता था। औपनिवेशक काल में विदेशी शासकों ने भारतीय उत्पादों को हासिए पर धकेल दिया और अपनी वस्तुओं से बाजार को पाट दिया। इसके विरोध में 20वीं शताब्दी की शुरूआत में 'स्वदेशी आंदोलन' ने जन्म लिया, जिसने स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा प्रदान की। स्वदेशी का प्रमुख उद्देश्य स्थानीय संसाधनों और श्रम को लेकर उत्पाद तैयार करना और विदेशी निर्भरता को कम करना है। यह सिर्फ आर्थिक गतिविधियां ही नहीं, वास्तव में राष्ट्रीय स्वाभिमान और सांस्कृतिक संरक्षण से भी जुड़ा हुआ है। आज भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है और 2047 तक इसे 'विकसित भारत' बनाने का लक्ष्य प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने निर्धारित किया है। इस परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी उत्पादों की प्रासंगिता और अधिक बढ़ जाती है। वैश्विकीकरण और तकनीकी विकास के कारण उपभोक्ताओं की जीवनशैली बदल रही है। सक्षम लोग विदेशी ब्रांडों की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं, ऐसे में स्वदेशी उत्पादों के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनकी गुणवत्ता, विपणन और प्रतिस्पर्द्धा की है। हालांकि बदलते समय के साथ स्वदेशी उत्पादों को पर्याप्त नये अवसर भी मिल रहे हैं।

हमारे देश में हजारों सालों से परंपरागत स्वदेशी ज्ञान की अविरल धारा बहती आ रही है। हमारे पुरखों ने कृषि, औषधि, हस्तशिल्प, योग और पर्यावरण संतुलन जैसे विविध क्षेत्रों में अद्वितीय ज्ञान अर्जित किया था, वह ज्ञान आज भी प्रासंगिक है। यदि मौजूदा संदर्भ में इन परंपराओं को पुनर्जीवित किया जाए तो इससे बेरोजगारी और आर्थिक संकट जैसी गंभीर समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। स्वदेशी ज्ञान के जरिए हम आत्मनिर्भरता की दिषा में तेजी से आगे बढ़ सकते हैं। भारत की परंपरागत तकनीकी में प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम और संतुलित उपयोग करने की गहरी समझ है। अतीत में यह ज्ञान न केवल हर व्यक्ति के लिए रोजगार के अवसर पैदा करता रहा है, बल्कि सतत विकास को भी सुनिश्चित करता आया है। इस ज्ञान को हासिल करने के लिए किसी स्कूल, कॉलेज या प्रशिक्षण संस्थान में नहीं जाना पड़ता। यह ज्ञान अपने गांव या गांव के आसपास ही सहज रूप से मिल जाता है। स्वदेशी ज्ञान का अर्थ सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यापक रूप लिए हुए हैं। इसमें पारंपरिक कौशल के साथ–साथ पुरखों के अनुभवों का निचोड़ भी शामिल है, जो लोगों को छोटी उम्र से ही विभिन्न काम–धंधों में हुनरमंद बना देता है। हमारे समाज में बर्तन निर्माण, खेती,

भवन निर्माण, सिंचाई, बुनाई, कढ़ाई, चित्रकारी, मूर्ति निर्माण, आभूषण निर्माण, खाना बनाना, खिलौने बनाना, अचार–मुरब्बे बनाना, पारंपरिक औषधियों का निर्माण, वस्तु–कला और हस्तशिल्प जैसे उद्योग–धंधे परंपरागत ज्ञान से ही विकसित होते रहे हैं।

प्राचीन समय में इसी ज्ञान पर आधारित काम–धंधों के बुते पर हमारे देश की आर्थिक व्यवस्था अत्यंत सुदृढ़ थी। उपनिवेशक शासकों और विदेशी आक्रांताओं ने न केवल हमारी धन–संपदा को लूटा, बल्कि हमारे कुटीर उद्योगों को भी खत्म कर दिया। आजादी के बाद स्वदेशी ज्ञान आधारित काम–धंधों को पनपाने के लिए अपेक्षित प्रयास नहीं किए गए। जिससे पारंपरिक काम–धंधे धीरे–धीरे खत्म होते चले गये। लेकिन पिछले एक दशक से नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में पुनः 'स्व' का बोध जगा है और इसके सुपरिणाम भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

भारत आर्थिक प्रगति के लिहाज से जापान को पीछे छोड़ते हुए विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश बन गया है। इस उपलब्धि को हासिल करने में सरकार की अन्य नीतियों के साथ–साथ स्वदेशी के विशेष योगदान का हाथ है, जो 140 करोड़ भारतीयों के परिश्रम, अनुशासन और आत्मविश्वास की सामूहिक सक्रियता का सुपरिणाम है।

पिछले एक दशक में भारत की अर्थव्यवस्था ने कई उतार–चढ़ाव– कोविड महामारी, वैश्विक मंदी, युद्ध और भू–राजनीतिक तनाव भी झेले हैं। इसके बावजूद भारत ने न केवल स्थिरता बनाये रखी, बल्कि तेजी से आगे बढ़ते हुए आर्थिक विकास की रफ्तार में दुनिया के कई विकसित देशों को पीछे छोड़ दिया। देशवासियों को नववर्ष की शुभकामना संदेश देते हुए प्रधानमंत्री ने बताया कि सुस्पष्ट नीति, स्थिरता, निर्णायक नेतृत्व और सुधारों की निरंतरता ने भारत को इस मुकाम पर पहुंचाया है।

सरकार में 'स्व' के बोध का एहसास होने के कारण 'मेक इन इंडिया', 'आत्मनिर्भर भारत', 'डिजिटल इंडिया', 'स्टार्टअप इंडिया' और 'उत्पादन–लिंक्ड प्रोत्साहन योजना' लागू की गई, जो भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ बन गई। इन पहलों से विनिर्माण क्षेत्र को नई जान मिली, विदेशी निवेश बढ़ा और करोड़ों लोगों को रोजगार के नये अवसर प्राप्त हुए। आज भारत मोबाइल फोन निर्माण, दवाईयों, वाहन और रक्षा उपकरण उत्पाद जैसे क्षेत्रों में वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का अहम हिस्सा बन गया है। डिजिटल के क्षेत्र में तो क्रांति ही हो गई, जो भारत की आर्थिक छलांग का एक बड़ा आधार बन गया। यूपीआई आधारित डिजिटल भुगतान प्रणाली ने न केवल देश के भीतर लेन–देन को सरल बनाया, बल्कि दुनिया को भारत की तकनीकी क्षमता का लोहा मनवाया। डिजिटल सार्वजनिक अवसरंचना–आधार, जनधन और मोबाइल ने शासन को पारदर्शी बनाया और योजनाओं का लाभ सीधे आम नागरिक तक पहुंचा कर समावेशी विकास को संभव बनाने का काम किया। अब आर्थिक प्रगति का अर्थ केवल जीडीपी के आंकड़े नहीं, बल्कि समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाना हो गया है।

किसानों के लिए सम्मान निधि, ग्रामीण सड़कों का विस्तार, हर घर जल, गरीबों को घर और स्वास्थ्य बीमा जैसी योजनाओं ने लोगों का जीवन स्तर ही बदल दिया है। मुद्रा योजना के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने का काम किया गया है। सौर और पवन ऊर्जा में भारत विश्व का अग्रणी देश बन गया है। बिजली वाहन, हरित हाईड्रोजन और स्वच्छ ऊर्जा आने वाले वर्षों में भारत को एक नई आर्थिक शक्ति देगा। कौशल विकास, कृत्रिम बुद्धिमता, सेमीकंडक्टर, अंतरिक्ष तकनीक और रक्षा उपकरणों में आत्मनिर्भरता ही नहीं बल्कि निर्यात, भारत को मजबूत बनायेगा। भारत अब केवल उपभोक्ता देश नहीं, बल्कि नवाचार और उत्पादक राष्ट्र बन रहा है। आने वाला दशक भारत का होगा। भारत अब विश्व की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बनने की राह में तेजी से आगे बढ़ रहा है। यह है 'स्व' के बोध का सुपरिणाम है, जो पूर्व में भी भारत की प्रगति का आधार था और आगे भी रहने वाला है।

(वरिष्ठ स्तंभकार एंव लेखक)

लोकतंत्र की आत्मा - नागरिक कर्त्तव्य बोध

–डॉ. सोनू प्रताप सिंह

लोकतंत्र एक जीवन पद्धति और नैतिक दर्शन है जो नागरिकों की सक्रिय भागीदारी और उनके उत्तरदायित्वों पर आधारित होता है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि उसकी संवैधानिक पांडुलिपि कितनी समृद्ध है, बल्कि इस पर निर्भर करती है कि उसके नागरिक अपने अधिकारों के साथ–साथ अपने कर्तव्यों के प्रति कितने सजग हैं। 'लोकतंत्र की आत्मा' कहे जाने वाला नागरिक कर्तव्य बोध वह आत्म–प्रेरणा है जिससे व्यक्ति बिना किसी बाहरी दबाव या दंड के डर से, समाज की भलाई के लिए कार्य करता है। जहाँ अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जो समाज में संतुलन और न्याय सुनिश्चित करते हैं । आधुनिक समय में, विशेष रूप से भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में, 'कर्त्तव्य बोध' की अवधारणा इस विचार को पुनर्जीवित करने का प्रयास है कि राष्ट्रीय प्रगति का मार्ग उत्तरदायी नागरिकता से होकर गुजरता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्त्तव्य बोध

भारतीय ज्ञान परम्परा (Indian Knowledge System) में 'नागरिक कर्त्तव्यबोध' केवल एक कानूनी उत्तरदायित्व नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक और नैतिक अनुशासन है। यहाँ कर्त्तव्य को 'धर्म' के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है, जो समाज और ब्रह्मांड की व्यवस्था को बनाए रखता है।

धर्म और कर्त्तव्य

भारतीय परम्परा में 'कर्तव्य' शब्द की उत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है– 'धारण करना'। अतः धर्म वह है जो समाज को धारण करता है।

- **अधिकार बनाम कर्त्तव्यः–** पाश्चात्य दर्शन जहाँ 'अधिकारों' (Right) पर बल देता है, वहीं भारतीय दर्शन 'कर्त्तव्य' (Duties) को प्राथमिकता देता है। यहाँ माना जाता है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म का पालन करे, तो दूसरों के अधिकारों की रक्षा स्वतः हो जाएगी।
- **ऋण की अवधारणा–** भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुसार मनुष्य पर जन्म से ही तीन मुख्य ऋण होते हैं– देव ऋण, ऋषि ऋण, और पितृ ऋण। इन ऋणों को चुकाना ही नागरिक का प्राथमिक कर्तव्य है।

भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में कर्त्तव्यबोध

स्रोत	प्रमुख शिक्षा / सिद्धांत
वेद/ उपनिषद	'सत्यं वद, धर्मं चर' (सत्य बोलो, धर्म का पालन करो)।
कौटिल्य का अर्थशास्त्र	सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा, करों का समय पर भुगतान और राजकीय नियमों का पालन।
मनुस्मृति/ याज्ञवल्क्य स्मृति	सामाजिक व्यवस्था और वर्ण-आश्रम के अनुसार कर्तव्यों का निर्धारण।
श्रीमद्भगवद्गीता	'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' - अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहना।

भारतीय ज्ञान परम्परा में नागरिक कर्त्तव्यबोध के आयाम

- **व्यक्तिगत स्तर (आत्म–अनुशासन):–** नागरिक का पहला कर्तव्य स्वयं का सर्वांगीण विकास है ताकि वह समाज पर बोझ न बने। इसमें श्यमश (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और शनियमश (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान) का पालन अनिवार्य है।
- **सामाजिक स्तर (परहित):–** 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना नागरिक को समाज के प्रति संवेदनशील बनाती है। 'लोकसंग्रह' (जनकल्याण) को सर्वोच्च कर्तव्य माना गया है।
- **राष्ट्रः राज्य स्तर (राजधर्म और**

प्रजाधर्म):—कौटिल्य के अनुसार, ''प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है।'' वहीं प्रजा का कर्तव्य है कि वह राज्य की अखंडता बनाए रखे और संकट के समय राष्ट्र की सेवा के लिए तत्पर रहे।

भारतीय संविधान में नागरिक कर्तव्य बोध

संवैधानिक कर्तव्य (Constitutional Duties): भारत के संविधान के अनुच्छेद 51 (1) में 11 मौलिक कर्तव्यों का वर्णन है। जैसे—

- संविधान, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान करना।
- देश की एकता और अखंडता की रक्षा करना।
- सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखना और हिंसा से दूर रहना।
- पर्यावरण (नदियों, वनों और वन्यजीवों) की रक्षा करना।
- **सामाजिक एवं नैतिक कर्तव्य (Social & Moral Duties):** यह हमारे दैनिक व्यवहार से जुड़ा है, जिसे अक्सर 'सिविक सेंस' कहा जाता हैरू
- सार्वजनिक स्थानों पर स्वच्छता बनाए रखना (कूड़ा न फैलाना)।
- यातायात नियमों (Traffic Rules) का पालन करना।
- दूसरों के अधिकारों और निजता का सम्मान करना।
- पड़ोसियों और समाज के कमजोर वर्गों की सहायता करना।

लोकतांत्रिक कर्तव्य (Democratic Duties):

- चुनाव में बिना किसी लालच के मतदान करना।
- देश की समस्याओं के प्रति जागरूक रहना और सकारात्मक चर्चा में भाग लेना।

कर्तव्य बोध का महत्त्व

1. **सामाजिक सद्भाव**— जब हर व्यक्ति अपने कर्तव्य को समझता है, तो आपसी टकराव कम होते हैं और समाज में शांति बनी रहती है।
2. **देश का विकास**— एक अनुशासित और जागरूक नागरिक ही देश को आर्थिक और सामाजिक रूप से समृद्ध बना सकता है।
3. **अधिकारों की सुरक्षा**— जब मैं अपना कर्तव्य निभाता हूँ, तो अनजाने में मैं किसी दूसरे के अधिकारों की रक्षा कर रहा होता हूँ। (जैसेरू सड़क पर सही दिशा में गाड़ी चलाना दूसरों की सुरक्षा का अधिकार सुनिश्चित करता है)।
4. **संसाधनों का संरक्षण**— बिजली, पानी और सार्वजनिक सुविधाओं का जिम्मेदारी से उपयोग करना देश के संसाधनों को बचाता है।

समकालीन प्रासंगिकता और चुनौतियाँ

आज के वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ व्यक्तिवाद (Individualism) बढ़ रहा है, भारतीय कर्त्तव्यबोध निम्नलिखित रूप में प्रासंगिक हैः

1. पर्यावरण संरक्षण— प्रकृति को 'माता' मानकर उसकी रक्षा करना (भूमि सूक्त)।
2. सामाजिक समरसता— 'अद्वैत' की भावना से भेदभाव मिटाना।
3. भ्रष्टाचार मुक्तिः 'अस्तेय' (चोरी न करना) और श्अपरिग्रहश (संग्रह न करना) के माध्यम से।

लोकतंत्र की आत्मा उसके संस्थानों में नहीं, बल्कि उसके नागरिकों के 'कर्त्तव्यबोध' में निवास करती है। अधिकार हमें 'स्वतंत्र' बनाते हैं, लेकिन कर्त्तव्य हमें 'सभ्य' और 'जिम्मेदार' बनाते हैं । भारत में नागरिक चेतना का संकट केवल व्यवहारिक नहीं, बल्कि संरचनात्मक और मनोवैज्ञानिक भी है। अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच के असंतुलन को दूर करने के लिए हमें गांधीजी की नैतिकता और अंबेडकर की संवैधानिकता के बीच एक मध्यमार्ग खोजना होगा। चित्रकूट का 'समाज शिल्पी' मॉडल यह सिखाती हैं कि जब नागरिक शासन के 'सह—निर्माता' बनते हैं, तभी लोकतंत्र वास्तव में समृद्ध होता है । 'नागरिक कर्त्तव्य बोध' केवल एक नारा नहीं, बल्कि एक राष्ट्रीय संकल्प होना चाहिए, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि उसकी व्यक्तिगत अनुशासनहीनता राष्ट्र की प्रगति को धीमा कर सकती है, जबकि उसका एक छोटा सा उत्तरदायी कदम भारत को वैश्विक गौरव के शिखर पर ले जा सकता है।

(संस्थापक सह निदेशक
एस. 2 एम. रिसर्चर सोल्युशन प्राइवेट लिमिटेड)

युवा पीढ़ी और नागरिक कर्त्तव्य बोध

—दीप शिखा

भारत केवल भू–भाग नहीं, बल्कि विचार, संस्कार और दायित्व की परंपरा है। इस परंपरा की सबसे सशक्त कड़ी युवा पीढ़ी है। आज भारत की औसत आयु लगभग 28 वर्ष है–अर्थात देश युवा है। लेकिन वास्तविक प्रश्न यह नहीं कि युवा कितने हैं, बल्कि यह है कि वे अपने नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति कितने सजग हैं।

नागरिक कर्त्तव्यः केवल संविधान की पंक्तियाँ नहीं

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51(।) में नागरिक कर्त्तव्यों का उल्लेख है–राष्ट्र की एकता–अखंडता की रक्षा, संविधान का सम्मान, सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, पर्यावरण संरक्षण आदि। परंतु वास्तविकता यह है कि अधिकांश युवा इन्हें परीक्षा के प्रश्न या औपचारिक जानकारी से आगे नहीं ले जाते।

आज का यथार्थ यह है कि

- मतदान प्रतिशत में युवा वर्ग की भागीदारी अपेक्षाकृत कम है।
- सार्वजनिक संपत्ति को "सरकारी चीज" समझकर नुकसान पहुँचाया जाता है।
- सोशल मीडिया पर राष्ट्र, समाज और व्यक्तियों के प्रति असंयमित भाषा बढ़ रही है।
- अधिकारों की माँग तेज है, पर कर्त्तव्यों के निर्वहन में उदासीनता दिखती है।

डिजिटल युग का युवाः जागरूक या भ्रमित?

युवा आज सबसे अधिक सूचनाओं से घिरा हुआ है, लेकिन यह सूचना–बाढ़ विवेक को कमजोर भी कर रही है। तथ्य और अफवाह, आलोचना और अपमान, अभिव्यक्ति और अराजकता–इनके बीच की रेखा धुंधली होती जा रही है।

यथार्थ यह है कि

- हर मुद्दे पर राय बन रही है, पर अध्ययन कम हो रहा है।

- विरोध हो रहा है, पर समाधान पर चर्चा नहीं।
- देशभक्ति शब्दों में दिखती है, व्यवहार में नहीं।

पंचतंत्र का संदेश– कर्त्तव्य पहले, अधिकार बाद में पंचतंत्र की कहानियाँ हमें सिखाती हैं कि बुद्धि, संयम और कर्त्तव्यबोध से ही समाज चलता है। जैसे जंगल का प्रत्येक जीव अपनी भूमिका निभाता है, वैसे ही राष्ट्र का हर नागरिक–विशेषकर युवा–यदि अपना दायित्व निभाए, तो व्यवस्था सुदृढ़ होती है।

हमारी विचारधारा भी इसी मूल सत्य पर आधारित है:

"राष्ट्र निर्माण सरकार से नहीं, समाज के जागरूक नागरिकों से होता है।"

आज आवश्यकता है कि युवा:

- मतदान को अधिकार नहीं, कर्त्तव्य समझें।
- कानून का पालन डर से नहीं, समझ से करें।
- सामाजिक समरसता को व्यवहार में उतारें–जाति, धर्म, क्षेत्र से ऊपर उठकर।
- स्वच्छता, पर्यावरण और सार्वजनिक अनुशासन को व्यक्तिगत जिम्मेदारी मानें।
- डिजिटल मंचों पर संयम, तथ्य और मर्यादा का पालन करें।

समाधान का मार्ग: चरित्र से राष्ट्र

न राष्ट्र केवल नीतियों से बनता है, न नारों से। राष्ट्र बनता है चरित्र से।
युवा यदि ईमानदारी को आदत, अनुशासन को संस्कार और सेवा को स्वभाव बना ले, तो वही सबसे बड़ा नागरिक कर्त्तव्य होगा।

आज का युवा यदि केवल प्रश्न करेगा, तो समाज असंतुलित होगा। यदि केवल मानेगा, तो समाज जड़ होगा। लेकिन यदि समझकर अपने कर्त्तव्यों का पालन करेगा, तो भारत सशक्त, समरस और आत्मनिर्भर बनेगा।

युवा पीढ़ी को यह तय करना है–
वह केवल परिवर्तन की माँग करने वाली पीढ़ी बनेगी, या परिवर्तन को जीने वाली।

यही नागरिक कर्त्तव्य की सच्ची परीक्षा है।

(युवा पत्रकार)

उम्र बढ़ाओ

– अरुण दिव्यांश

सृष्टि हेतु है जीवन बहुमूल्य,
जीवन सरल स्वस्थ बनाओ रे।
पेड़ लगा पानी बचा,
प्लास्टिक हटा उम्र बढ़ाओ रे ।।1।।

पेड़ पानी मित्र सच्चे हमारे,
प्लास्टिक है जीवन अवरोधी ।
प्लास्टिक करे जीवन बाधित,
प्लास्टिक है स्वास्थ्य विरोधी।।2।।

प्लास्टिक है पर्यावरण तक्षक
वृक्ष जल है सबका संरक्षक।
हम हैं वृक्ष–जल के भक्षक।
कौन बने जीवन का रक्षक।।3।।

बंद करो अब वृक्ष का कर्तन,
मत करो जल का दुरुपयोग।
प्लास्टिक होता जीवन घातक,
मत बढ़ाओ जीवन में रोग।।4।।

शहर गॉव पेड़ पानी पे निर्भर,
वृक्ष और फल से जीवन सुंदर।
पेड़ लगा पानी बचा,
प्लास्टिक हटा उम्र बढ़ाओ रे।।5।।

ऋतु परिवर्तन और हमारा स्वास्थ्य –डा. रमण कुमार झा

ऋतु परिवर्तन प्रकृति का एक स्वाभाविक नियम है, जिसका सीधा प्रभाव मानव जीवन और स्वास्थ्य पर पड़ता है। बिहार जैसे राज्य में, जहाँ ग्रीष्म, वर्षा और शीत – तीनों ऋतुएँ अपने–अपने तीव्र रूप में देखने को मिलती हैं, वहाँ ऋतु परिवर्तन के समय स्वास्थ्य के प्रति विशेष सावधानी आवश्यक हो जाती है। जनवरी का महीना बिहार में शीत ऋतु का चरम काल माना जाता है। जब ठंड, कोहरा और शुष्क वातावरण स्वास्थ्य संबंधी अनेक चुनौतियाँ लेकर आता है।

जनवरी में बिहार का मौसम प्रायः ठंडा और शुष्क रहता है। सुबह और रात के समय घना कोहरा छा जाता है, जिससे तापमान काफी नीचे चला जाता है। इस मौसम में शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हो सकती है। सर्दी–खांसी, जुकाम, बुखार, फ्लू, गले में खराश, सांस संबंधी रोग तथा जोड़ों के दर्द जैसी समस्याएँ आम हो जाती हैं। विशेष रूप से बच्चे, बुजुर्ग और पहले से बीमार लोग इस मौसम में अधिक प्रभावित होते हैं।

शीत ऋतु में त्वचा भी रूखी हो जाती है। जनवरी के ठंडे और शुष्क मौसम में त्वचा फटना, होंठों का सूखना और खुजली जैसी समस्याएँ बढ़ जाती हैं। इसके अलावा, ठंड के कारण रक्त संचार धीमा पड़ता है, जिससे उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और गठिया के मरीजों को अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

ऋतु परिवर्तन का प्रभाव केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। जनवरी में धूप कम मिलने और ठंड के कारण लोगों में आलस्य, थकान और कभी–कभी उदासी की भावना देखी जाती है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से जनवरी में संतुलित आहार और सही दिनचर्या अत्यंत आवश्यक है। इस मौसम में गर्म और पोषक भोजन जैसे दाल, सब्जियाँ, हरी पत्तेदार साग, तिल, गुड़, मूंगफली और अदरक का सेवन शरीर को ऊर्जा देता है और प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। पर्याप्त मात्रा में गुनगुना पानी पीना भी लाभकारी होता है। ठंड के बावजूद हल्का व्यायाम, योग और सुबह की धूप लेना शरीर और मन दोनों के लिए उपयोगी है।

बिहार में जनवरी के दौरान स्वच्छता का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। कोहरे और ठंड के कारण संक्रमण फैलने की संभावना बढ़ जाती है, इसलिए साफ कपड़े पहनना, हाथों की स्वच्छता बनाए रखना और ठंडी हवा से बचाव करना जरूरी है। ऊनी कपड़ों का सही उपयोग और अचानक ठंड–गर्मी से बचना भी स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

ऋतु परिवर्तन, विशेषकर जनवरी माह की शीत ऋतु, हमारे स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती है। यदि हम मौसम के अनुसार अपने खान–पान, दिनचर्या और जीवनशैली में संतुलन बनाए रखें, तो न केवल बीमारियों से बच सकते हैं, बल्कि स्वस्थ और सक्रिय जीवन भी जी सकते हैं। प्रकृति के इस परिवर्तन को समझकर उसके अनुरूप स्वयं को ढालना ही उत्तम स्वास्थ्य की कुंजी है।

(वार्ताधारित)

कर्त्तव्यों के सम्यक निर्वहन से भारत बनेगा विश्व का मार्गदर्शक

– दत्तात्रेय जी

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 100 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में दरभंगा मेडिकल कॉलेज हॉस्पिटल के सभागार में 17 जनवरी को एक जन गोष्ठी का आयोजन किया गया। संघ के शताब्दी वर्ष के अवसर पर आयोजित इस कार्यक्रम के मुख्य वक्ता संघ के सरकार्यवाह मा. दत्तात्रेय होसबाले जी थे।

कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए मा. दत्तात्रेय जी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 100 वर्षों की तपस्या, सेवा, समर्पण और राष्ट्र निर्माण की यात्रा पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि संघ की स्थापना से लेकर आज तक उसका एकमात्र उद्देश्य राष्ट्र को परम वैभव तक पहुँचाना रहा है। संघ ने समाज को संगठित करने, राष्ट्रभक्ति का भाव जागृत करने तथा सामाजिक समरसता को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने कहा कि संघ किसी व्यक्ति या सत्ता के लिए नहीं, बल्कि राष्ट्र और समाज के लिए कार्य करता है। सेवा कार्य, शिक्षा, सामाजिक समरसता, स्वावलंबन, पर्यावरण संरक्षण और सांस्कृतिक पुनर्जागरण जैसे क्षेत्रों में संघ के स्वयंसेवक निरंतर निःस्वार्थ भाव से कार्य कर रहे हैं। आज जब भारत वैश्विक मंच पर सशक्त रूप से उभर रहा है, तब संघ के शताब्दी वर्ष का यह कालखंड आत्ममंथन और भविष्य के दायित्वों को समझने का अवसर है।

उन्होंने युवाओं का आह्वान करते हुए कहा कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में युवाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनुशासन, चरित्र निर्माण, सेवा भाव और राष्ट्र के प्रति समर्पण के साथ युवा पीढ़ी आगे बढ़े, यही संघ की अपेक्षा है। उन्होंने कहा कि संगठित समाज ही सशक्त राष्ट्र की नींव होता है। उन्होंने सामाजिक समरसता विषय पर कहा कि समाज में किसी भी प्रकार का भेदभाव राष्ट्र की एकता के लिए घातक है। संघ समरस समाज की कल्पना करता है, जहाँ जाति, वर्ग और पंथ के भेद से ऊपर उठकर सभी एक–दूसरे के पूरक बनें। सामाजिक समरसता ही सशक्त और अखंड भारत की आधारशिला है।

पंच परिवर्तन पर प्रकाश डालते हुए सरकार्यवाह जी ने कहा कि संघ के शताब्दी वर्ष में समाज के समक्ष पाँच महत्वपूर्ण परिवर्तन का लक्ष्य रखा गया है–

सामाजिक समरसता, पर्यावरण संरक्षण, स्वदेशी जीवन शैली, नागरिक कर्त्तव्य बोध और कुटुंब प्रबोधन।

ये पंच परिवर्तन केवल विचार नहीं, बल्कि व्यवहार में लाने योग्य संकल्प हैं, जिनके माध्यम से समाज आत्मनिर्भर और राष्ट्रनिष्ठ बनेगा। उन्होंने कहा कि परिवार भारतीय संस्कृति की सबसे मजबूत इकाई है। वर्तमान समय में परिवार व्यवस्था को सुदृढ़ करना अत्यंत आवश्यक है। संस्कारयुक्त, संवादशील और संस्कृतिनिष्ठ परिवार ही राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करते हैं। उन्होंने परिवारों से आग्रह किया कि वे अपने दैनिक जीवन में संस्कार, समय और समर्पण को प्राथमिकता दें।

कार्यक्रम में प्रबुद्धजनों, समाजसेवियों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों एवं बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों की सहभागिता रही।

RNI No.-BIHHIN/2003/12538 Postal Reg:R-10/NP-39/Patna GPO/23-25

पत्रकारिता कार्यशाला का आयोजन

विश्व संवाद केंद्र द्वारा 12 दिवसीय पत्रकारिता कार्यशाला का शुभारंभ 12 जनवरी को किया गया। स्वामी विवेकानंद जयंती से प्रारंभ इस कार्यशाला में पटना के अलग–अलग क्षेत्र से लोग उपस्थित हुए। कार्यक्रम का उद्घाटन करते हुए बिहार लोक सेवा आयोग के सदस्य प्रो. अरुण भगत ने कहा कि पत्रकारिता के बिना सबल समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। पत्रकार समाज का नियामक और नियंता होता है। किसी भी समाज को आगे बढ़ाने के लिए लोगों की भावनाओं का ख्याल रखना पड़ता है। पत्रकारिता के कारण ही नीति नियंताओं को जन– भावना की जानकारी मिलती है। सरकार की नीतियों के प्रचार – प्रसार में भी इसकी अहम भूमिका होती है।

उद्घाटन कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि वरिष्ठ पत्रकार राकेश प्रवीर ने कहा कि सब कोई जन्मजात पत्रकार होता है परंतु जहां संवाद संप्रेषण की बात होती है, वही पत्रकारिता होती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दक्षिण बिहार प्रांत के सह प्रांत प्रचार प्रमुख निखिल रंजन ने विश्व संवाद केंद्र द्वारा आयोजित गत 22 वर्षों से लगातार चलाई जा रही पत्रकारिता कार्यशाला की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि बिहार में शायद ही कोई ऐसी संस्था होगी, जो इतने लंबे समय से लगातार पत्रकारिता कार्यशाला का आयोजन कर रही है। इस कार्यशाला द्वारा कई ख्यातनाम पत्रकार बने।

संस्था के संपादक संजीव कुमार ने कहा कि इस कार्यशाला से प्रशिक्षण प्राप्त कर कई प्रतिष्ठित पत्रकार बने। यहां 12 दिनों में पत्रकारिता के विविध आयामों की जानकारी दी जाती है। मीडिया के क्षेत्र में काम करने वाले लोग ही उन्हें इस विधा की जानकारी देते हैं। एक प्रकार से यह कार्यशाला उनके अंदर पत्रकारिता का बीजारोपण

करने का प्रयास है। कार्यशाला में सैद्धांतिक के साथ–साथ प्रायोगिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है इसके अलावा प्रतिभागी किसी मीडिया हाउस का भ्रमण करने भी जाते हैं।

कार्यशाला में इस बार 'सबरंग' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। प्रतिभागियों ने बातचीत में बताया कि पत्रकारिता की जो पढ़ाई 2 अथवा 3 वर्ष में होती है, उसकी प्रारंभिक जानकारी यहां 12 दिनों में हो जाती है। यह कार्यशाला बिहार के अनुभवी पत्रकारों द्वारा कराया जा रहा है। यह पत्रकारिता के व्यावहारिक आयाम पर अधिक केंद्रित है।

डाक टिकट

पता